चतुर्थ संस्करण

'संगीत' का विशेष प्रकाशन

सूर-संगीत

(प्रथम भाग)

स्वरकार

स० आ० महाडकर 'संगीतविशारद'

सम्पादक

लक्ष्मीनारायण गर्ग

प्रकाशक

© संगीत कार्यालय, हाथरस (उ० प्र०)

मूल्य १)५०

प्रथम संस्करण
अगस्त १९५२
द्वितीय संस्करण
जुलाई १९५४
तृतीय संस्करण
दिसम्बर १९५८
चतुर्थ संस्करण
जून १९६४

प्रकाशक की ओर से—

'सूर-संगीत' के लिए संगीत-सम्राट् पं० ओम्कारनाथजी ठाकुर ने प्राक्कथन लिखने की जो कृपा की है, उसके लिए पण्डितजी के हम अत्यन्त आभारी हैं और आशा करते हैं कि 'संगीत' और 'संगीत-कार्यालय' के प्रति सर्वदा ही उनका ऐसा प्रेम-भाव बना रहेगा।

सूर-पदों का भावार्थ लिखने में हमें श्री मधुसूदन शरण 'बेदिल' तथा पण्डित दुर्गादत्तजी 'शान्त' से जो सहायता प्राप्त हुई है, उसके लिए हम उन्हें हृदय से धन्यवाद देते हैं। साथ-ही-साथ इसके स्वरलिपिकार श्री महाडकर महोदय का आभार-प्रदर्शन करना भी आवश्यक है, जिन्होंने सूर-पदों को मनोहर बंदिशों में लिपिबद्ध करके अपनी कुशलता का परिचय दिया है।

'सूर-संगीत' के प्रथम भाग के तीन संस्करण समाप्त होगए, अब इसका यह संशोधित चतुर्थ संस्करण उपस्थित है। इसका द्वितीय भाग भी प्रकाशित हो गया है।

आशा है, संगीत-प्रेमी 'सूर-संगीत' के इन अमूल्य रत्नों को सदैव अपनाते रहेंगे और हमें इस सागर के अपूर्व पद-रत्नों को क्रमशः संगीतमय प्रकाशित करते रहने का प्रोत्साहन देंगे।

मुद्रक
संगीत प्रेस, हाथरस

प्राक्कथन

संगीतमार्तण्ड पं० ओम्‌कारनाथ ठाकुर

संगीत-जगत् में एक नया ग्रंथ अवतरित होने जारहा है, जिसका नाम है—'सूर-संगीत'।

वैष्णव-सम्प्रदाय के महान् भक्त-कवि सूरदासजी के चुने हुए पदों को स्वर और ताल में निबद्ध करके, भक्त-कवि के निगूढ़ भावों की अभिव्यंजना करने का यह एक श्लाघ्य सुप्रयास है।

प्रचलित संगीत पर वैष्णव-संप्रदाय का महान् ऋण है। वैष्णव-मन्दिरों में भगवान् के जो लीला-गान गाए जाते हैं एवं जो आठों पहर और छहों ऋतुओं के समयानुकूल लीला-गान की परिपाटी दीर्घकाल से चली आरही है, इस परिपाटी ने संगीत-जगत् को बड़ा ही अमूल्य दान दिया है। आज के प्रचलित ध्रुवपदों, होरियों-धमारों तथा ख्यालों के पदों के सूक्ष्म एवं अभ्यासपूर्ण निरीक्षण से यह कथन भलीभाँति परिपुष्ट हो जाएगा। इन पदों में सूरदासजी, कुम्भनदासजी, लक्ष्मनदासजी, परमानन्ददासजी आदि भक्त-कवियों के मधुरतम, ललित भावों से भरे गीतों का कितना विपुल स्थान है, वह स्वर और शब्द, राग और कविता—इन दोनों की ओर दृष्टि रखनेवालों को सहज ही में दिखाई देगा।

गुणी तानसेनजी, जो भारत के महान् गायनाचार्य थे, जिनके गान की ख्याति और तान की प्रसिद्धि आज भी सर्वमान्य है, उनके पदों से एवं नायक बैजू बावरा, जो भारत के उस समय के सर्वश्रेष्ठ संगीत-धन थे, उनके और अन्य अनेक गुणीजनों के पदों से आज का संगीत विश्व-मुखरित है। तानसेनजी के महान् गुरु स्वामी श्रीहरिदासजी, जिनके गीत-धन से आज का संगीत-साम्राज्य समृद्ध है तथा जिस लोकोत्तर सम्पत्ति से संगीत-सृष्टि आज भी गौरवान्वित है, ऐसे संगीत-महर्षि भी संगीत-जगत् के लिए वैष्णव-सम्प्रदाय की ही देन हैं।

भक्ति-सम्प्रदाय के सभी भक्त, कवि तो थे ही, किन्तु श्रेष्ठ गायक भी थे। वे सभी गायक-कवि थे। सूरदास, तुलसीदास, कबीरदास, रैदास, मीराबाई, गुरु नानक, नरसी मेहता, दयाराम, तुकाराम तथा त्यागराज आदि सभी महान् भक्त थे, श्रेष्ठ कवि थे और परम गायक थे। उन्हें निजानुभूति से यह दर्शन प्राप्त हुआ था कि भवसागर पार करने के लिए तूँबे का सहारा अनिवार्य है। प्रकाश से परम प्रकाश दिखाई देता है। रूप से ही परम रूप नजर आता है। तद्वत् नादब्रह्म से ही परब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। वे जानते थे कि 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय', इसके सिवा कोई चारा नहीं है। इसीसे विश्व के सभी भक्त तम्बूरे की ही नाव में बैठते हैं। उसी तम्बूरे की तान में तल्लीन

होकर वे जो-कुछ करते थे, उनके मुख से भाव की जो वैखरी निर्झरित होती थी, वह स्वयं कविता बन जाती थी। और, वही गीत संगीत बन जाता था। जो शब्द-ब्रह्म उनके मुख से कविता के रूप में इस अवनि पर अवतरित हुआ, वह आज भी अखण्ड रूप से जनता के हृदय के तमस् को हटाकर उसे आलोकित करता है और जनता की आत्मा को अन्तरतम भावों की भागीरथी में निमज्जन कराता है।

कभी-कभी कोई कवि मुझसे पूछ बैठता है कि इन भक्त-कवियों की कविताओं में ऐसी कौन-सी बात है, जो इन्हें गाते हुए और सुनते हुए गायक और जनता अघाते ही नहीं हैं और हमारी कविता में क्या कमी है, जो वह जनता के कानों तक पहुँचती ही नहीं और यदि किसी ने पहुँचा भी दी, तो जनता के कंठ से वह कल्लोलित नहीं होती ? मेरे सामने इसका एकमात्र उत्तर यही है कि भक्त, कविता करने बैठते नहीं। वे कवि बनकर कविता नहीं करते। वे संगीत के गुंजन में तन्मय होकर अपने इष्टदेव की आराधना करते हैं और उस समय उनके मुख से सहज और स्वयमेव शब्द टपक पड़ते हैं, वही गीत के रूप में राग बनकर और कविता के रूप में संगीत बनकर गूँज उठते हैं। उनकी कविता, कविता नहीं; वह हृत्तन्त्री की झंकार है। उनकी आत्मा की अनुभूति, भावों की भाषा में आलापित होकर, गा उठती है। जब वर्तमान कवि भी इस परम सत्य का दर्शन करेंगे, तब उन्हें गायकों से और जनता से कोई शिकायत न रहेगी। तब उनकी कविता में प्राण होगा, जीवन होगा, प्रसाद होगा। उसका प्रभाव अचिन्त्य होगा, शाश्वत होगा और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' होगा।

यह विश्व भगवान् की रस-सृष्टि का प्रतिबिम्ब है और गायक-कवि का गीत इस भाव की व्यंजना का प्रतिघोष है। रस में डूबते ही वाणी मुखरित हो उठती है। स्वर के आंदोलन जाग जाते हैं और इस प्रकार स्वर–शब्द एक साथ झंकृत हो उठते हैं। वही 'संगीत' है, कविता भी वही है।

हमारे सूर कवि की कविता किसी ऐसी ही दिव्य घड़ी में गूँज उठी है, जिनके शब्द स्वयं स्वर बन गए हैं और जिनकी कविता स्वयं संगीत बन गई है। सूरदासजी की ऐसी ही दिव्य वाणी को ग्रथित करने का इस ग्रंथ (सूर-संगीत) में यथासाधन और यथाशक्ति प्रशस्त प्रयास किया गया है।

क, च, ट, त, प आदि व्यंजन तबतक पंगु हैं, जबतक वे अकारादि स्वरों से संयोजित न हों। स्वर की सहायता के बिना शब्द भी निःसहाय हैं। एक ही शब्द के अनेक अर्थ स्वर के सहयोग से ही सम्भावित हैं। जीवन के व्यवहार में जिन्हें आँखें हैं, वे नित्यप्रति, प्रतिपल देखते और जानते हैं कि सारा विश्व नाद के ही अधीन है। शास्त्रकारों ने इसी से कहा है कि—

नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात् पदात् वचः।
वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमिदम् जगत्॥

इसी दृष्टि से सूरदासजी की शब्द-देह में स्वर-ताल के द्वारा आत्मा का संचार करने के उद्देश्य से इस ग्रन्थ का निर्माण किया गया है। वह जैसा है, बुधजनों के सम्मुख है।

विज्ञजन अपनाएँ या न अपनाएँ, सफल कहें या निष्फल घोषित करें; किन्तु मेरी राय में तो यह प्रयत्न नितान्त सुश्लाघ्य है, श्रेयस्कर है, सराहनीय है एवं उत्तेजनीय है। मेरी दृढ़ीभूत मान्यता है कि 'अकारणात् मन्दकरणं श्रेयः।'

वर्तमान समय के प्रचलित शास्त्रीय संगीत में जो गीत गाए जाते हैं, उनके शब्द अर्थ, भाव और रस, रागों और रागिनियों के रस-भाव के साथ संवादित होते हुए नहीं दीखते। राग और रागिनियों के रस-भाव को देखकर, उसकी यथार्थ अनुभूति पाकर, तदनुसार और तदनुकूल गीत-पद्य का चुनाव होना चाहिए। किन्तु इस बात का अभाव प्रतिपल खटकता है। आज के शास्त्रीय संगीत में वांछित रस का निर्माण नहीं होता। उसका मुख्यतः और मूलतः यही कारण है कि रसानुकूल शब्द नहीं होते और अर्थानुकूल स्वर नहीं होते। या तो अर्थानुकूल राग का चुनाव हो, या राग के रसानुकूल काव्य का चुनाव हो। शब्द और स्वर के संयोग से ही दिव्य संगीत उद्भूत होता है। विश्व को जब स्वर-शब्दमय संगीत की संप्राप्ति होगी, तभी ज्ञानी, अज्ञानी—सभी समाधि का परमानन्द पा सकेंगे।

शब्द स्थूल है। उसे सामान्य जन और विज्ञजन—दोनों समझ सकते हैं।

स्वर सूक्ष्म है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है; उसके अर्थ निगूढ़तम हैं और इसीलिए उसकी भाव-व्यंजना सामान्य-जन की ग्रहण-शक्ति से परे है। जैसे प्रणव का दिव्य गान ज्ञानी ही सुन सकते हैं, तद्वत् स्वर के दिव्यालोक का दर्शन वही कर सकते है, जो शब्दातीत हैं।

इसीलिए सूर-जैसे महान् गायक-कवि के काव्य को संगीत में अवतारणा करना परमावश्यक एवं परम कर्तव्य है! सामान्य और विज्ञ—सभी की आत्मा उस दिव्य संगीत में अवगाहन कर सकेगी और विशुद्ध हो सकेगी।

सभी को शिकायत है कि आजकल सिनेमा-संगीत ने अनर्थ कर छोड़ा है। साथ-साथ यह भी सुनते हैं कि सिनेमा-संगीत में शब्द और स्वर के संयोग के कारण एक विशेष आकर्षण रहता है। और इसी आकर्षण से आकर्षित होकर जनता उस संगीत के प्रति उन्मुख होकर उमड़ पड़ती है।

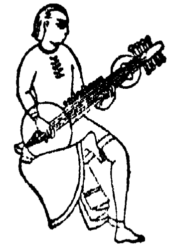
किन्तु कुछ लोग इस संगीत का घोर विरोध भी करते हैं और कहते हैं कि इस संगीत के द्वारा हमारे समाज का स्तर नीचे गिरता जारहा है, हमारी मनोवृत्तियाँ भ्रष्ट हो रही हैं और हमारे समाज की आत्मा पतन पारही है। उनका यह कथन नितांत सत्य है, उनकी घोर पतन की आशंका भी यथार्थ है। किन्तु इसका कारण खोजना चाहिए और कारण खोजकर उसे निर्मूल करना चाहिए। यह अनुभवसिद्ध है कि उच्च भावनाओं से निबद्ध शब्द जब स्वरों का संयोग पाते हैं, तो गानेवालों या सुननेवालों का सदैव उत्थान करते हैं। और लघु, निकृष्ट भाव-भरे शब्द जब स्वरों का संयोग पाते हैं, तो गानेवालों या सुननेवालों का घोर पतन करते हैं। ज्ञानीजन इसलिए शब्दातीत होकर स्वर में तल्लीन होते हैं और आत्मसमाधि का आनन्द पाते हैं। यदि जनता को, जिसकी उसे भूख है, प्यास है, ऐसा स्वर-शब्द का संगीत देना हो और उसे पतन से बचाना हो

तो सूरदासजी और ऐसे ही अन्य महान् गायक-कवियों के पदों का संगीतकरण करके वह संगीत उन्हें दिया जाए, सुनाया जाए, सिखाया जाए। मेरा विश्वास है कि यदि ऐसा किया गया, तो सिनेमावाले भी दौड़ते हुए इस ओर झुकेंगे और भारत की जनता को पतित होने से बचाकर ऐसे संगीत द्वारा उसके हृदय को दिव्य-स्थापनापन्न करने का एक भव्य स्वप्न सिद्ध किया जा सकेगा। प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद गुरुदेव श्रीविष्णु-दिगम्बरजी ने कुछ बेसमझ गायकों के "पण्डितजी तो अब गायक नहीं रहे, भजनीक बन गए" ऐसे उलाहने सहकर भी सूर, तुलसी, मीरा, कबीर आदि के पदों को अपने संगीत में हेतुपूर्वक स्थान दिया था और जीवन-भर उसे निभाया था। उनके शिष्य-प्रशिष्यों में भी वही संस्कार अवतरित हुए हैं और वे इन महाकवियों के पद-लालित्य का पूर्ण भाव अपने कण्ठ से ललकारकर जनता की आत्मा तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं।

'संगीत-कार्यालय' के संचालकों ने 'सूर-संगीत' के द्वारा वही लोकोत्तर कार्य आरम्भ किया है। मैं उनके इस प्रशंसनीय प्रयास का स्वागत करता हूँ और समादर के साथ उसकी सफलता चाहता हूँ।

जन्माष्टमी
संवत् २००६ वि०

ओंकारनाथ गौरीशंकर ठाकुर



पद-सूची 'सूर-संगीत'

(प्रथम भाग)

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च ।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥

न तो मैं वैकुण्ठ में ही रहता हूँ और न योगियों के हृदय में। हे नारद! जहाँ पर मेरे भक्त गायन करते हैं, मैं वहीं पर उपस्थित रहता हूँ। —पद्मपुराण

स्वरलिपियों का चिह्न-परिचय

प	जिन स्वरों के ऊपर-नीचे कोई चिह्न न हो, वे मध्य (बीच की) सप्तक के शुद्ध स्वर हैं।
ध॒	जिन स्वरों के नीचे पड़ी लकीर हो, वे कोमल स्वर हैं; किन्तु कोमल मध्यम पर कोई चिह्न नहीं होगा, क्योंकि कोमल मध्यम को शुद्ध भी कहते हैं।
मं॑	तीव्र मध्यम इस प्रकार होगा।
नि़	जिनके नीचे बिन्दी हो, वे मन्द्र (पहली) सप्तक के स्वर हैं।
सां	ऊपर बिन्दीवाले स्वर तार (तीसरी) सप्तक के स्वर हैं।
प–	जिस स्वर के आगे जितनी लकीरें (–) हों, उसे उतनी ही मात्रा तक और बजाइए।
रा ऽ	जिस अक्षर के आगे जितने अवग्रह (ऽ) के चिह्न हों, उसे उतनी ही मात्रा तक और गाइए।
धप	इस प्रकार जितने भी स्वर मिले हुए (सटेहुए) हों, उन सबको एक मात्रा में बजाइए।
× ० ।	× सम का, ० खाली का तथा । ताली का चिह्न है।
,	यह चिह्न स्वरलिपियों में या तानों में अलग-अलग टुकड़े दिखाता है।
*	ऐसा फूल जहाँ हो, वहाँ पर एक मात्रा चुप रहना होगा।
⌒	स्वरों के ऊपर यह चिह्न मीड़ देने के लिए होता है।
ग प	इस प्रकार किसी स्वर के ऊपर कोई स्वर हो, तो ऊपरवाले स्वर को जरा-सा छूते हुए नीचे के स्वर को बजाइए। इसे कण-स्वर कहते हैं।
(म)	इस प्रकार कोई स्वर कोष्ठक में बन्द हो, तो उसके आगे का स्वर, वह स्वर और उससे पहले का स्वर तथा फिर वही स्वर लेकर एक मात्रा में ही बजाइए; जैसे (म)=पमगम।
∿∿∿	यह चिह्न स्वरों के ऊपर जमजमा देने के लिए होता है, अर्थात् स्वरों को हिलाना चाहिए।

चरनकमल बन्दौं......!

[राग वृन्दावनीसारंग—तीनताल]

(१)

चरनकमल बन्दौं हरिराइ ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अन्धे कौं सब-कछु दरसाइ ॥
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराइ ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार-बार बन्दौं तिहिं पाइ ॥

भावार्थ—मैं उन सर्वश्रेष्ठ भगवान् हरि के कमलवत् चरणों की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से लँगड़ा व्यक्ति पहाड़ों को लाँघ सकता है, अंधे की आँखों को प्रकाश मिलता है, बहरा व्यक्ति सुनने लगता है, गूँगा बोलने लगता है और भिखारी भी सम्राट् बन सकता है। भक्तशिरोमणि सूरदासजी कहते हैं कि मैं ऐसे दयावान् प्रभु के चरणों की एक बार नहीं, अनेक बार वन्दना करता हूँ ।

स्थायी •

०				३				×				२			
नि	सा	रे	म	प	नि	प	म	प	म	रे	सा	रे	–	सा	–
च	र	न	क	म	ल	बं	ऽ	दौं	ऽ	ह	रि	रा	ऽ	इ	ऽ
नि	प	नि	नि	सा	–	सा	–	रेम	पम	रे	सा	रे	–	सा	–
जा	ऽ	की	कृ	पा	ऽ	पं	ऽ	गुऽ	ऽऽ	गि	रि	लं	ऽ	घै	ऽ
म	–	म	–	प	–	प	प	नि	नि	प	म	रे	–	सा	–
अं	ऽ	धे	ऽ	कौं	ऽ	स	ब	क	छु	द	र	सा	ऽ	इ	ऽ

अन्तरा •

म	प	नि	प	नि	सां	–	नि	–	सां	रें	सां	नि	सां	नि	प
ब	हि	रौ	ऽ	सु	नै	ऽ	गू	ऽ	क	पु	नि	बो	ऽ	लै	ऽ
म	प	रें	रें	सां	–	नि	प	मप	नि	प	म	रे	–	सा	–
रं	ऽ	क	च	लै	ऽ	सि	र	छऽ	ऽ	त्र	ध	रा	ऽ	इ	ऽ

शेष अन्तरे इसी प्रकार गाए जाएंगे ।

अबिगत-गति कछु......!

[राग पहाड़ी—तीनताल : मध्यम को षड्ज मानकर गाइए]

(२)

अबिगत-गति कछु कहत न आवै ।
ज्यौं गूंगें मीठे फल कौ रस अन्तरगत हीं पावै ।
परम स्वाद सबही सु निरन्तर, अमित तोष उपजावै ।
मन-बानी कौं अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ।।
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगति-बिनु निरालम्ब कित धावै ।
सब बिधि अगम विचारहिं तातैं सूर सगुन-पद गावै ।।

भावार्थ—उस अज्ञात प्रभु की लीला कहने में नहीं आ सकती । ठीक उसी प्रकार, जैसे कोई गूंगा व्यक्ति मीठा फल खाने के बाद उसकी मिठास का अनुभव मन-ही-मन में करता है, किन्तु वाणी द्वारा नहीं कह सकता । भगवान् की महिमा का स्वाद अत्यन्त ही मधुर है, जो सबके लिए समान रूप से सदैव संतोष प्रदान करता है । यह स्वाद मन और वाणी से परे है, जिसमें इसके समझने की क्षमता है, वही पा सकता है । सूरदासजी कहते हैं कि ऐसे परमात्मा को, जिसकी न कोई रूपरेखा है, न कोई प्रत्यक्ष गुण है, न जाति है और न उसे पाने की कोई ठोस युक्ति है; तब उन्हें ढूंढनेवाला, बिना किसी सहारे के किधर जाए ? सारी दुनिया उन्हें अदृश्य तथा निर्गुण बताती है, इसलिए मैं उनके सगुण गुणानुवाद गाता हूं । इनसे संसार के व्यक्तियों को परमात्मा की महिमा जानने में सहायता मिलेगी ।

• **स्थायी**

२				०				३				×			
सा	ग	रे	रे	सा	रे	सा	सानि़	ध़	नि़	प़	ध़	सा	-	सा	-
अ	बि	ग	त	ग	ति	क	छुऽ	क	ह	त	न	आ	ऽ	वै	ऽ
सा	ग	रे	रे	नि़रे	सानि़	धनि़	पध़	सा	-	सा	-	ग	-	ग	म
अ	बि	ग	त	ज्यौंऽ	ऽऽ	गूंऽ	ऽऽ	गें	ऽ	मी	ऽ	ठे	ऽ	फ	ल
मग	रेग	रे	रे	सा	-	रे	रे	ग	रे	ग	म	गरे	ग	सा	-
कौऽ	ऽऽ	र	स	अ	ऽ	न्त	र	ग	त	ही	ऽ	आऽ	ऽ	वै	ऽ
नि़सा	नि़सा	ध़नि़	सा												
ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	गति कछु.................।											

• **अन्तरा**

ध़	सा	रे	ग	-	ग	ग	ग	रेग	म	म	मग	रे	ग	सा	सा
प	र	म	स्वा	ऽ	द	स	ब	हीऽ	ऽ	सु	निऽ	रं	ऽ	त	र

ग	ग	ग	ग	मरे	ग,	म	प	म	–	ग	म	रे	ग	सा	–
अ	मि	त	तो	ऽऽ	ष	उ	प	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	वै	ऽ
प़	ध़	सा	रे	म	ग	सा	सा	रे	म	प	ध	म	ग	रे	सा
म	न	बा	ऽ	नी	ऽ	कौं	ऽ	अ	ग	म	अ	गो	ऽ	च	र
सा	–	रे	–	ग	रे	ग	प	म	–	–	–	गरे	ग	सा	–
सो	ऽ	जा	ऽ	नै	ऽ	जो	ऽ	पा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	वै	ऽ

वासुदेव की बड़ी बड़ाई !

[राग यमनकल्याण—तीनताल]

(३)

वासुदेव की बड़ी बड़ाई ।
जगत-पिता, जगदीस, जगत-गुरु, निज भक्तनि की सहत ढिठाई ।।
भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल-सुखदाई ।
सिव-बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देव न पाई ।।
बिनु बदलैं उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई ।
रावन अरि कौ अनुज बिभीषन, ताकौं मिले भरत की नाई ।।
बकी कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुण्ठ पठाई ।
बिनु दीन्हैं ही देत सूर-प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाई ।।

भावार्थ—वासुदेव (भगवान्) का बड़प्पन वास्तव में बहुत बड़ा है । आप संसार के पिता, विश्व के ईश्वर और संसार-भर के गुरु होते हुए भी, अपने भक्तों के अपराधों को सहन करते रहते हैं । इसका यहाँ उदाहरण दिया जाता है—एक बार भृगु मुनि ने तीनों देवों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सहन-शक्ति जाँचने के लिए, उन पर अपना क्रोध प्रकट किया । किन्तु वह शंकर और ब्रह्माजी को सहन न हो सका और वे मुनिराज को मारने के लिए दौड़े । पश्चात् जाकर भृगुजी ने भगवान् विष्णु की छाती में लात मारी, किन्तु प्रभु क्रोधित नहीं हुए, बल्कि भृगुजी का चरण पकड़कर बोले—प्रभु ! मेरे वज्र-से वक्ष से टकराकर आपके कोमल चरण को चोट आगई होगी । भगवान् बदले की इच्छा न रखकर ही भक्तों का उपकार किया करते हैं और बिना स्वार्थ के प्रेम भी । जैसे—उन्होंने रामावतार में सुग्रीव तथा विभीषण को अपने प्रिय अनुज भरत के समान समझकर उनसे मित्रता की । पूतना-जैसी दुष्टा राक्षसी स्तनों पर विष लगाकर दूध पिलाने आई, किन्तु भगवान् ने स्तनों में से उसके प्राण खींच लिए और उसे बैकुण्ठ भेज दिया । भक्त कवि सूरदास कहते हैं कि यादवों के नाथ भगवान् कृष्ण ऐसे दाता हैं कि वह बिना दिए ही सब-कुछ प्रदान करते हैं ।

● **स्थायी**

०				३				x				२			
ग	म	ग	रे	ग	रे	सा	-	नि	ध	-	प	ग	रे	गम॑	पम॑
बा	ऽ	सु	दे	ऽ	व	की	ऽ	ब	ड़ी	ऽ	ब	ड़ा	ऽ	ईऽ	ऽऽ
ग	ग	ग	रे	ग	ध	प	प	ग	-	रे	रे	ग	रे	सा	सा
ज	ग	त	पि	ता	ऽ	ज	ग	दी	ऽ	स,	ज	ग	त	गु	रु
नि	ध	नि	सां	नि	ध	प	-	ग	म	ग	रे	नि॒	रे	गम॑	पम॑
नि	ज	भ	ऽ	क्त	नि	की	ऽ	स	ह	त	ढि	ठा	ऽ	ईऽ	ऽऽ

● **अन्तरा**

म॑	ध	नि	प	-	ग	म॑	ध	सां	सां	सां	-	नि	रें	सां	-
सि	व	बि	रं	ऽ	चि	मा	ऽ	र	न	कौं	ऽ	धा	ऽ	ए	ऽ
नि	रें	गं	रें	नि	रें	सां	-	नि	ध	नि	सां	नि	ध	प	-
य	ह	ग	ति	का	ऽ	हू	ऽ	दे	ऽ	व	न	पा	ऽ	ई	ऽ
प	ग	प	प	प	ध	प	प	ग	रे	ग	रे	सा	रे	सा	सा
बि	नु	ब	द	लैं	ऽ	उ	प	का	ऽ	र	क	र	त	हैं	ऽ
नि	ध	नि	सां	नि	ध	प	प	ग	म	ग	रे	नि॒	रे	गम॑	पम॑
स्वा	ऽ	र	थ	बि	ना	ऽ	क	र	त	मि	ऽ	आ	ऽ	ईऽ	ऽऽ

प्रभु कौ देखौ एक......!

[राग गारा—तीनताल : मध्यम को षड्ज मानकर गाइए]

(४)

प्रभु कौ देखौ एक सुभाइ।
अति-गम्भीर उदार-उदधि हरि, जान-सिरोमनिराइ ॥
तिनका-सौं अपने जन कौ गुन, मानत मेरु-समान।
सकुचि गनत अपराध-समुद्रहिं, बूँद-तुल्य भगवान ॥
बदन-प्रसन्न-कमल सनमुख ह्वै, देखत हौं हरि जैसें।
बिमुख भए अकृपा न निमिषहूँ, फिर चितयौं तौ तैसें ॥
भक्त-बिरह-कातर करुनामय, डोलत पाछैं लागे।
सूरदास ऐसे स्वामी कौं, देहिं पीठि सो अभागे ॥

भावार्थ—सूरदासजी इस पद में भगवान् के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहते हैं—मेरे प्रभु अत्यन्त दयालु हैं, समुद्र के समान गम्भीर तथा राजाओं में सिरमौर हैं। अपने भक्त के, तिनके के समान गुण को पहाड़ के बराबर मानते हैं और समुद्र के समान अपराध को संकोच के साथ जल की बूँद के बराबर शुमार करते हैं। भगवान् का भक्त यदि उनसे विमुख होजाए और पुनः उनकी सेवा में पहुँचे, तो वे उसके अपराध को ध्यान में न लाते हुए, उसे पुनः पहले की तरह ही प्रेम से देखते हैं। जो भगवान् अपने भक्तों से अलग होने के बाद बिछोह से दुःखित होकर उनके पीछे-पीछे भागे डोलते हैं, ऐसे भगवान् को भुलानेवाला सरासर अभागा है।

स्थायी •

२				०				३				×			
ग	म	रे	ग	नि़	(सा)	नि़	ध़	प़	ध़	सा	रे	ग	(म)	ग	–
प्र	भु	कौ	ऽ	दे	ऽ	;खौ	ऽ	ए	ऽ	क	सु	भा	ऽ	इ	ऽ
–	–	–	–	नि़	नि़	नि़	–	सा	–	सा	सा	ध़सा	रेम	ग	रे
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अ	ति	गं	ऽ	भी	ऽ	र	उ	दाऽ	ऽऽ	र	उ
सानि़	सा	नि़	ध़	ग	–	ग	ग	ग	–	म	प	ग	म	म	–
द	धि	ह	रि	जा	ऽ	न,	सि	रो	ऽ	म	नि	रा	ऽ	इ	ऽ
रे	ग	सा	–	नि़सा	रेग	रेसा	नि़ध़								
प्र	भु	कौ	ऽ	देऽ	ऽऽ	खौऽ	ऽऽ	एक सुभाइ..........।							

अन्तरा •

ग	ग	ग	म	रेग	–रे	ग	म	प	–	प	प	मप	धप	म	ग
ति	न	का	ऽ	सौंऽ	ऽऽ	अ	प	ने	ऽ	ज	न	कौऽ	ऽऽ	गु	न
ग	म	प	ध	(नि)	–	ध	प	रे	ग	म	(प)	ग	प	म	ग
मा	ऽ	न	त	मे	ऽ	रु	स	मा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न	ऽ
ग	ग	ग	ग	ग	म	रे	ग	म	प	ग	म	रे	ग	सा	सा
स	कु	चि	ग	न	त	अ	प	रा	ऽ	ध	स	मु	ऽ	द्र	हिं
प़	–	ध़	सा	–	रे	ग	प	म	–	–	–	गरे	ग	सा	–
बूँ	ऽ	द	तु	ऽ	ल्य	भ	ग	वा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	न	ऽ
नि़सा	रेग	रेसा	नि़ध़												
देऽ	ऽऽ	खौऽ	ऽऽ	एक सुभाइ..........।											

हरि सौं ठाकुर और न......!

[राग नंद—तीनताल]

(५)

हरि सौं ठाकुर और न जन कौं ।
जिहिं-जिहिं बिधि सेवक सुख पावै, तिहिं बिधि राखत मन कौं ॥
भूख भए भोजन जु उदर कौं, तृषा तोय, पट तन कौं ।
लग्यौ फिरत सुरभी ज्यौं सुत-सँग, औचट गुनि गृह बन कौं ॥
परम उदार, चतुर चिंतामनि, कोटि कुबेर निधन कौं ।
राखत है जन की परतिज्ञा, हाथ पसारत कन कौं ॥
संकट परें तुरत उठि धावत, परम सुभट निज पन कौं ।
कोटिक करै एक नहिं मानैं, सूर महा कृतघन कौं ॥

भावार्थ—भगवान् हरि के समान मनुष्य का अन्य कोई स्वामी अथवा रक्षक नहीं है । जिस-जिस प्रकार भी भक्त को सुख मिलता है, भगवान् उसी प्रकार उसका मन रखते हैं । भूख लगने पर पेट को भोजन, प्यास लगने पर पानी और तन ढँकने के लिए वस्त्र भी देते हैं । जिस प्रकार गाय अपने बछड़े के साथ-साथ वन में डोलकर उसकी हर प्रकार से रक्षा करती रहती है, उसी प्रकार दीनबन्धु भगवान् भी भक्त की, हर जगह रक्षा करते रहते हैं । आप अत्यन्त ही दयालु, चतुर और चिंतामणि के तुल्य हैं । निर्धन के लिए करोड़ों कुबेर के समान हैं । ऐसे होने पर भी अपने भक्त की प्रतिज्ञा रखने के लिए कहीं-कहीं कण की भीख माँगने लग जाते हैं । अपने प्रण को पूरा करने में असीम बल के भण्डार भगवान् संकट के समय भक्त की पुकार पर तुरन्त दौड़े आते हैं । सूरदास के लिए भी वे इस प्रकार की करोड़ों कृपाएँ करते हैं, किन्तु वह ऐसा कृतघ्न है कि एक भी एहसान नहीं मानता ।

• **स्थायी**

०				३				×				२		
ग	म	गम	धप	रे	–	सा	सा	ग	–	म	म	म	मग	प
ह	रि	सौंऽ	ऽऽ	ठा	ऽ	कु	र	औ	ऽ	र	न	ज	नऽ	कौं
ग	म	प	ध	नि	नि	प	–	ग	म	ध	प	रे	–	सा
जि	हिं	जि	हिं	बि	धि	से	ऽ	व	क	सु	ख	पा	ऽ	वै
ध़	नि़	सा	ग	सा	ग	म	प	ध	नि	प	–	पध	मं	प
ति	हिं	बि	धि	रा	ऽ	ख	त	म	न	कौं	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा •

ग	म	प	सां	सां	सां	सां	–	सां	सां	नि	ध	नि	रें	सां	–
भू	ऽ	ख	भ	ए	ऽ	भो	ऽ	ज	न	जु	उ	द	र	कौं	ऽ
प	नि	–	नि	–	रें	नि	नि	पनि	धनि	प	–	गम	धप	गम	प
तृ	षा	ऽ	तो	ऽ	य	प	ट	तऽ	नऽ	कौं	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ
सा	ग	–	ग	ग	म	ध	प	ग	–	म	प	रे	रे	सा	सा
ल	ग्यौ	ऽ	फि	र	त	सु	र	भी	ऽ	ज्यौं	ऽ	सु	त	सँ	ग
ध़	नि़	सा	ग	सा	ग	म	प	ध	नि	प	–	पध	र्म	प	–
औ	ऽ	च	ट	गु	नि	गृ	ह	ब	न	कौं	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ

हरि सौं मीत न देख्यौ......!

[राग काफी—तीनताल]

(६)

हरि सौं मीत न देख्यौ कोई ।
बिपति-काल सुमिरत, तिहिं औसर आनि तिरीछौ होई ।।
ग्राह गहे गजपति मुकरायौ, हाथ चक्र लै धायौ ।
तजि बैकुण्ठ, गरुड़ तजि, श्री तजि, निकट दास कैं आयौ ।।
दुर्बासा कौ साप निबार्‌यौ, अम्बरीष-पति राखी ।
ब्रह्मलोक-परजंत फिर्‌यौ तहँ, देव-मुनी-जन साखी ।।
लाखागृह तैं जरत पांडु-सुत, बुधि-बल नाथ, उबारे ।
सूरदास-प्रभु अपने जन के नाना त्रास निवारे ।।

भावार्थ—हरि (भगवान्) के समान कोई दूसरा मित्र देखने में नहीं आया । विपत्ति के समय भक्त की पुकार सुनकर, तुरन्त उसकी रक्षा के लिए आजाते हैं । ग्राह ने जब गजराज को मुँह में दबा लिया था, तो गजराज की करुण पुकार सुनकर बैकुण्ठ, गरुड़ एवं श्रीलक्ष्मीजी को छोड़ दिया और हाथ में चक्र लेकर तुरन्त उसकी रक्षा को दौड़े आए । इसी प्रकार दुर्वासा ऋषि के शाप का निवारण करके राजा अम्बरीष की लाज रखी, जोकि अपनी रक्षा के लिए ब्रह्मलोक तक दौड़ता फिरा था । लाख के घर से जलते हुए पांडव-पुत्रों की रक्षा की । सूरदासजी के कहने का आशय है कि प्रभो ! आपने समय-समय पर अपने भक्तों के अनेक संकटों का निवारण किया है ।

• स्थायी

×				२				०				३			
ऩि	ध	ऩि	प	ध	म	प	प	ग	सारे	म	–	प	–	पध	निसां
ह	रि	सौं	ऽ	मी	ऽ	त	न	दे	ऽऽ	ख्यौ	ऽ	को	ऽ	ईऽ	ऽऽ
रे	म	रेम	पध	मप	–	ग	रे	रेग	सारे	म	–	प	–	प	–
ह	रि	सौंऽ	ऽऽ	मीऽ	ऽ	त	न	देऽ	ऽऽ	ख्यौ	ऽ	को	ऽ	ई	ऽ
ध	ध	ध	ध	–	ध	म	म	रे	म	ऩि	प	ग	–	रे	रे
बि	प	ति	का	ऽ	ल	मु	मि	र	त	ति	हिं	औ	ऽ	स	र
म रे	–	म	म	प	–	धऩि	पध	ऩि	सां	सां	–	ऩिध	पम	पध	ऩिसां
आ	ऽ	नि	ति	री	ऽ	छौऽ	ऽऽ	हो	ऽ	ई	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ

• अन्तरा

प	म	ऩि	प	ग	–	रे	रे	रे	ग	म	ग	रेग	रेसा	सा	–
आ	ठ	ह	ग	हे	ऽ	ग	ज	प	ति	मु	क	राऽ	ऽऽ	यौ	ऽ
रे	–	रे	ग	–	ग	म	–	प	–	प	–	पध	पम	रेम	प
हा	ऽ	थ,	च	ऽ	क्र	लै	ऽ	धा	ऽ	यौ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ
ध	ध	ध	–	ध	–	ध,	ध	ध	ऩि	ध	प	ध	म	प	प
त	जि	बै	ऽ	कुं	ऽ	ठ,	ग	रु	ड़	त	जि	श्री	ऽ	त	जि
रे	रे	म	प	–	प	धऩि	पध	ऩि	सां	सां	–	ऩिध	पम	पध	ऩिसां
नि	क	ट	दा	ऽ	स	कैंऽ	ऽऽ	आ	ऽ	यौ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ



राम भक्तवत्सल निज......!

[राग भीमपलासी—तीनताल]

(७)

राम भक्तबत्सल निज बानौं ।
जाति, गोत, कुल, नाम गनत नहिं, रंक होइ कै रानौं ॥
सिव-ब्रह्मादिक कौन जाति प्रभु, हौं अजान नहिं जानौं ।
हमता जहाँ, तहाँ प्रभु नाहीं, सो हमता क्यौं मानौं ?
प्रगट खम्भ तें दए दिखाई, जद्यपि कुल कौ दानौ ।
रघुकुल राघव कृस्न सदा ही, गोकुल कीन्हौं थानौ ॥
बरनि न जाइ भक्त की महिमा, बारम्बार बखानौं ।
ध्रुव रजपूत, बिदुर दासी-सुत, कौन-कौन अरगानौ ॥
जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ, भक्तनि-हाथ बिकानौ ।
राजसूय मैं चरन पखारे, स्याम लिए कर पानौ ॥
रसना एक, अनेक स्याम-गुन, कहँ लगि करौं बखानौ !
सूरदास-प्रभु की महिमा अति, साखी बेद-पुरानौ ॥

भावार्थ—भगवान् राम भक्तवत्सल हैं । वे बिना किसी जाति, कुल, गोत्र, नाम आदि भेदभाव के अपने भक्तों की रक्षा करते हैं, चाहे उनका जन भिखारी हो अथवा राजा । शिवजी और ब्रह्माजी, जिनके हृदय में भगवान् बसते हैं, कौन-सी जाति के हैं ? यह मैं नहीं जानता, किन्तु इतना अवश्य जानता हूँ कि जहाँ अहं (मैं) का भाव है, वहाँ भगवान् नहीं हैं; अतः मैंने इस अहं-भाव का त्याग करदिया है । मैं ऐसे भाव को मानने ही क्यों लगा, जिसके कारण प्रभु से विमुख होना पड़े । आगे चलकर सूरदासजी भगवान् की भेदभाव-रहित नीति का उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यद्यपि प्रहलाद राक्षस-कुल का था, किन्तु प्रभु ने उसकी करुण पुकार पर खम्भ में से प्रकट होकर उसकी रक्षा की और प्रेम के वशीभूत होकर, सदैव अहीरों की बस्ती गोकुलपुरी में निवास किया । आप कितनी ही बार कहिए, किन्तु भगवान् के भक्तों की महिमा का वर्णन नहीं हो सकता, क्योंकि यह असीम है । ध्रुव राजपूत जाति के थे और विदुरजी दासी के पुत्र, किन्तु भगवान् ने अपने वात्सल्य से किसी को भी वंचित नहीं किया । युगों से यह बात प्रसिद्ध होती चली आई है कि प्रभु सदैव अपने भक्तों के हाथों बिकते रहे हैं । राजसूय-यज्ञ में भगवान् ने अपने हाथ में जल लेकर चरण भी पखारे हैं । अन्त में भक्तराज सूरदास कहते हैं कि मेरी जीभ तो केवल एक ही है और श्यामजू के गुण-गान अनेक हैं; जिनके साक्षी वेद-पुराण हैं; मैं उनका वर्णन कहाँ तक कर सकता हूँ ।

स्थायी

२				०				३				×			
<u>ग</u>	म	प	सां	<u>नि</u>	ध	प	—	<u>ग</u>	सा	<u>ग</u>	म	प	—	प	—
रा	ऽ	म	भ	ऽ	क्त	ब	ऽ	त्स	ल	नि	ज	बा	ऽ	नौं	ऽ

				म								सा		सा	
				ग	म	प	ग	म	ग	रे	सा	नि	-	नि	प
				जा	ऽ	ति	गो	ऽ	त	कु	ल	ना	ऽ	म	ग
सा				सा								सा			
नि	सा	सा	सा	नि	सा	ग	म	प	पम	ग	म	पनि	-	-	-
न	त	न	हिं	रं	ऽ	क	हो	ऽ	ऽ	ऽ	इ	कै	ऽ	ऽ	ऽ
प															
ध	-	प	-	गुम	नि	ध	प								
रा	ऽ	नौं	ऽ	ऽऽ	भ	क्त	ब								

● अन्तरा

									सां	सां		सां	सां		
सा	म	म	ग	म	प	प	म	प	नि	नि	प	नि	नि	सां	सां
सि	व	ब्र	ऽ	ह्मा	ऽ	दि	क	कौ	ऽ	न	जा	ऽ	ति	प्र	भु
	सां							सां	सां						
प	नि	सां	सांरें	गं	रें	सां	सां	नि	नि	सां	-	पध	-	प	-
हौं	ऽ	अ	जाऽ	ऽ	न	न	हिं	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	नौं	ऽ
ग	म	पनि	सां	निध	प	-	पम	ग	सा	गम	प	ग	मग	रे	सा
ह	म	ताऽ	ऽ	जऽ	हाँ	ऽ	ऽत	हाँ	ऽ	प्रऽ	भु	ना	ऽऽ	हीं	ऽ
सा												प			
नि	सा	ग	म	प	म	ग	म	पनि	-	-	-	ध	-	प	-
सो	ऽ	ह	म	ता	ऽ	क्यौं	ऽ	माऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नौं	ऽऽ

काहू के कुल तन न......!

[राग गौड़मल्हार—तीनताल]

(८)

काहू के कुल तन न बिचारत ।
अबिगत की गति कहि न परति है, व्याध-अजामिल तारत ॥
कौन जाति अरु पाँति बिदुर की, ताही कैं पग धारत ।
भोजन करत माँगि घर उनकैं, राज-मान-मद टारत ॥
ऐसे जनम-करम के ओछे, ओछनि हूँ ब्यौहारत ।
यहै सुभाव सूर के प्रभु कौ, भक्त-बछल-प्रन पारत ॥

भावार्थ—इस पद में भी जाति, कुल और मान-मर्यादा को छोड़ते हुए भगवान् के भक्त-वात्सल्य का वर्णन किया गया है। भगवान् किसी के कुल अथवा शरीर का विचार न करते हुए प्रेम के वशीभूत होकर, अपने भक्तों को संसार-सागर से पार करते हैं। व्याध, अजामिल जैसे अधम शरीरधारियों को भी उन्होंने भवसागर से तार दिया। विदुरजी की क्या जाति थी ? उनके घर भी भागे गए और वहाँ अपने राजकुल की मान-मर्यादा को भंग करते हुए, माँगकर भोजन किया। सूरदासजी कहते हैं कि ऐसे छोटे व्यक्तियों से भी, जो जन्म तथा कर्म से क्षुद्र माने जाते हैं, प्रभु ने व्यवहार किया। अतः ऐसे भगवान् की भक्त-वत्सलता एवं सुन्दर स्वभाव का उदाहरण और क्या हो सकता है।

स्थायी •

०				३				×				२			
								म	म	म					
रे	ग	रे	प	म	गरे	सा	सा	रे	रे	रे	ग	म	(प)	म	ग
का	ऽ	हू	ऽ	के	ऽऽ	कु	ल	त	न	न	बि	चा	ऽ	र	त
म	रे	प	प	प	–	म	प	धनि	सां	ध	नि॒प	म	प	म	ग
अ	बि	ग	त	की	ऽ	ग	ति	कऽ	हि	न	पऽ	र	ति	है	ऽ
नि॒	नि॒	नि॒													
ध	–	ध	ध	नि	–	सां	रें	सां	नि	सां	ध	नि॒	ध	प	प
व्या	ऽ	ध	अ	जा	ऽ	मि	ल	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	त

अन्तरा •

म	–	रे	प	–	प	नि	ध	नि	सां	सां	सां	सां	रें	सां	–
कौ	ऽ	न	जा	ऽ	ति	अ	रु	पाँ	ऽ	ति	बि	दु	र	की	ऽ
सां	–	ध	ध	नि	–	सां	रें	सां	नि	सां	–	ध	नि॒	प	प
ता	ऽ	ही	ऽ	कें	ऽ	प	ग	धा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	त
सां	–	रेंगं	मं	गं	रें	सां	धनि	सां	सां	धनि॒	प	म	प	म	–
भो	ऽ	जऽ	न	क	र	त	माँऽ	ऽ	गि	घ	र	उ	न	कें	ऽ
ध	–	ध	नि	–	नि	सां	रें	सां	नि	सां	ध	नि॒	ध	प	प
रा	ऽ	ज	मा	ऽ	न	म	द	टा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र	त

गोविंद प्रीति सबनि की……!

[राग माँड़—तीनताल]

(६)

गोबिंद प्रीति सबनि की मानत।
जिहिं-जिहि भाइ करत जन सेवा, अन्तर की गति जानत ॥
सबरी कटुक बेर तजि, मीठे चाखि, गोद भरि ल्याई।
जूठनि की कछु संक न मानी, भच्छ किए सत-भाई ॥
संतत भक्त-मीत हितकारी, स्याम बिदुर कैं आए।
प्रेम-बिकल, अति आनंद उर धरि, कदली-छिकुला खाए ॥
कौरव-काज चले रिषि सापन, साक-पत्र सु अघाए।
सूरदास करुना-निधान प्रभु, जुग-जुग भक्त बढ़ाए ॥

भावार्थ—भगवान् सबके प्रेम को मानते हैं। जो व्यक्ति जिस भाव से उनकी सेवा करता है, वे उसके अन्तर (मन) की बात को पहचानते हैं। शबरी कड़वे बेरों को छोड़कर, चाख-चाखकर मीठे बेर अपनी झोली में भरकर लाई, किन्तु भगवान् ने जूँठन की परवाह न करते हुए उन्हें सत्य-भाव से भोग लगाया, क्योंकि इन बेरों में प्रेम की पवित्र भावना निहित थी। भक्तों का सदैव हित करनेवाले, प्यारे श्यामसुन्दर विदुरजी के घर पहुँचे और वहाँ प्रेम के वशीभूत हो, हँसकर केलों के छिलके खाने लगे। कौरवों की बातों में आकर भूखे दुर्वासा ऋषि, पाण्डवों को वन में शाप देनेवाले थे, किन्तु द्रौपदी की देगची में लगे हुए शाक के कण से ही उनकी तथा उनके शिष्यों की तृप्ति होगई; इस प्रकार भगवान् ने पांडवों की रक्षा की। सूरदासजी कहते हैं कि दया के सागर भगवान् ने प्रत्येक युग में अपने भक्तों को बढ़ावा दिया है।

• **स्थायी**

२				०				३				×			
ग	म	प	ध	(सां)	–	ध	धप	ग	मग	रे	सा	रे	–	सा	सा
गो	ऽ	बिं	द	प्री	ऽ	ति	सऽ	ब	निऽ	की	ऽ	मा	ऽ	न	त
–	–	–	–	ग	म	प	ध	सां	–	सां	सां	सां	सां	सां	सां
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	जि	हिं	जि	हिं	भा	ऽ	इ	क	र	त	ज	न

नि	सां	ध	-	सां	-	सां	सां	नि	सां	ध	ध	पनि	धप	म	म
से	ऽ	वा	ऽ	ग्रं	ऽ	त	र	को	ऽ	ग	ति	जाऽ	ऽऽ	न	त
ग	म	प	ध												
गो	ऽ	बिं	द												

अन्तरा •

म	म	म	-	प	प	प	प	-	ध	नि	सां	धप	ध	प	-
स	ब	री	ऽ	क	टु	क	बे	ऽ	र	त	जि	मीऽ	ऽ	ठे	ऽ
सां	-	सां	सां	-	निध	प	ध	सां	-	सां	-	निरें	सांनि	ध	-
चा	ऽ	खि	गो	ऽ	दऽ	भ	रि	ल्या	ऽ	ई	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ
रें	-	रें	रें	रें	-	रें	रें	सां	-	रें	गं	गं	रें	सां	-
जू	ऽ	ठ	नि	की	ऽ	क	छु	सं	ऽ	क	न	मा	ऽ	नी	ऽ
सां	-	सां	सां	निसां	-	ध	ध	मं	-	प	नि	ध	-	-	-
भ	ऽ	च्छ	कि	ए	ऽ	स	त	भा	ऽ	ऽ	ऽ	ई	ऽ	ऽ	ऽ
सां	-	सां	सां	सां	नि	प	ध	सां	-	सां	-	ग	म	प	ध
भ	ऽ	च्छ	कि	ए	ऽ	स	त	भा	ऽ	ई	ऽ	गो	ऽ	बिं	द

सरन गए को......!

[राग जिल्हाकाफी—कहरवा : मध्यम को सा मानकर गाइए]

(१०)

सरन गए को, को न उबारयौ ।
जब-जब भीर परी संतनि कौं, चक्र सुदरसन तहाँ सँभारयौ ॥
भयौ प्रसाद जु अम्बरीष कौं, दुरबासा को क्रोध निवारयौ ।
ग्वालनि-हेत धरयौ गोबर्धन, प्रकट इन्द्र कौ गर्ब प्रहारयौ ॥
कृपा करी प्रहलाद भक्त पर, खम्भ फारि हिरनाकुस मारयौ ।
नरहरि-रूप धरयौ करुनाकर, छिनक-माँहि उर नखनि बिदारयौ ॥
ग्राह ग्रसत गज कौं जल-बूड़त, नाम लेत वाकौ दुख टारयौ ।
सूर स्याम बिनु और करै को, रंग-भूमि मैं कंस पछारयौ ॥

भावार्थ—इस पद में महाकवि सूरदास भगवान् की शरणागत-रक्षा का उल्लेख करते हैं। भगवान् की शरण लेनेवाले प्रत्येक जन की रक्षा हुई है। जहाँ कहीं, जिस समय भी साधुओं पर किसी प्रकार का संकट आया, वहीं चक्र सुदर्शन ने उनकी रक्षा की। दुर्वासा ऋषि के क्रोध को समाप्त करके अम्बरीष की रक्षा की और गोवर्धन के ग्वालों की पुकार पर, पर्वत को उठाकर इन्द्र के घमण्ड को चूर कर दिया। प्रह्लाद भक्त ने शरण ली, तो उसकी पुकार पर आप खम्बे में से ही प्रकट होगए और सिंह का रूप धारण करके क्षण-मात्र में, हिरण्यकश्यप-जैसे शक्तिशाली राक्षस का प्राणान्त कर दिया। गजराज ने पुकार की, तो जल में पहुँचकर ग्राह से उसे मुक्ति दिलाई। और तो क्या, रंगभूमि में कंस-जैसे असीम शक्तिवान् राक्षस को केश पकड़कर पछाड़ दिया, जिससे तुरन्त उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। यहाँ सूरदासजी के कहने का यही आशय समझना चाहिए कि ऐसे असाधारण कार्यों को भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं कर सकता।

- **स्थायी**

×				०				×				०			
रे	ग॒	रे	ग॒	सा	रे	ध़	नि़॒	सा	ग	ग	सा	साग	मप	गम	प
स	र	न	ग	ए	ऽ	को	ऽ	को	ऽ	न	उ	बाऽ	ऽऽ	र्‌यौ	ऽ
रे	ग॒	रे	ग॒	सा	रे	ध़	नि़॒	सा	–	सा	सा	सारे	ग॒रे	सा	–
स	र	न	ग	ए	ऽ	को	ऽ	को	ऽ	न	उ	बाऽ	ऽऽ	र्‌यौ	ऽ
ध़	ध़	सा	रे	ग	–	ग	–	रेग	म	म	ग	रे	ग	सा	–
ज	ब	ज	ब	भी	ऽ	र	प	रीऽ	ऽ	सं	ऽ	त	नि	कौं	ऽ
सा	प	प	प	प	नि॒	ध	प	म	ग	–	सा	ग	म	प	–
च	ऽ	क्र	सु	द	र	स	न	त	हाँ	ऽ	सें	भा	ऽ	र्‌यो	ऽ

- **अन्तरा**

ध़	सा	–	रे	ग	–	ग	गरे	म	–	म	म	गरे	ग	सा	–
भ	यौ	ऽ	प्र	सा	ऽ	द	जुऽ	अं	ऽ	ब	री	ऽऽ	ष	कौं	ऽ
सा	प	प	ध	पध	नि॒	ध	प	ग	म	ग	सा	ग	म	प	–
दु	र	बा	ऽ	साऽ	ऽ	को	ऽ	क्रो	ऽ	ध	नि	वा	ऽ	र्‌यौ	ऽ
म	ध	प	म	ग॒	रेसा	ध़	नि़॒	सा	–	सा	सा	सारे	गरे	सा	–
स	र	न	ग	ए	ऽऽ	को	ऽ	को	ऽ	न	उ	बाऽ	ऽऽ	र्‌यौ	ऽ

जैसैं तुम गज कौ……!

[राग गौड़सारंग—तीनताल]

(११)

जैसें तुम गज कौ पाउं छुड़ायौ ।
अपने जन कौं दुखित जानि कै, पाउँ पियादे धायौ ॥
जहँ-जहँ गाढ़ परी भक्तनि कौं, तहँ-तहँ आपु जनायौ ।
भक्ति-हेत प्रहलाद उबारयौ, द्रौपदि-चीर बढ़ायौ ॥
प्रीति जानि हरि गए बिदुर कें, नामदेव-घर छायौ ।
सूरदास द्विज दीन सुदामा, तिहिं दारिद्र नसायौ ॥

भावार्थ—इस पद में भी भगवान् द्वारा भक्तों की रक्षा एवं उनके संकटों को दूर करने के उदाहरण दिए गए हैं। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभो ! आपने भक्तों की रक्षा के लिए क्या नहीं किया ? गजराज की प्राण-रक्षा के लिए पैदल ही दौड़कर आए । केवल यही नहीं, जहाँ भी भक्तों पर संकट पड़ा, वहीं आप पहुँचे । प्रह्लाद की हिरण्यकश्यप से रक्षा की, द्रौपदी की लाज बचाने के लिए चीर बढ़ाया, प्रेम के वशीभूत होकर विदुरजी के घर पहुँचे और सुदामा-जैसे द्रव्यहीन ब्राह्मण को मालामाल कर दिया ।

स्थायी •

×				२				०				३			
रे	ग	म	प	ग	म	गरे	ग	सा	रे	नि़	सा	गम	पनि़	धप	मग
जै	सैं	तु	म	ग	ज	कौऽ	ऽ	पा	ऽ	उँ	छु	ड़ाऽ	ऽऽ	ऽऽ	यौऽ
रे	ग	म	प	ग	म	गरे	ग	सा	रे	नि़	सा	म	–	ग	–
जै	सैं	तु	म	ग	ज	कौऽ	ऽ	पा	ऽ	उँ	छु	ड़ा	ऽ	यौ	ऽ
सा	सा	म	ग	प	प	प	–	ध	नि़	ध	प	मं	प	म	ग
अ	प	ने	ऽ	ज	न	कौं	ऽ	दु	खि	त	जा	ऽ	नि	कै	ऽ
प	–	नि	सां	रें	–	सां	–	प	–	मं	प	म	–	ग	–
पा	ऽ	उँ	पि	या	ऽ	दे	ऽ	धा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	यौ	ऽ

अन्तरा •

ग	म	ग	म	प	–	नि	नि	सां	–	सां	–	सां	रें	सां	–
ज	हँ	ज	हँ	गा	ऽ	ढ़	प	री	ऽ	भ	ऽ	क्त	नि	कौं	ऽ

नि	नि	नि	नि	नि	सां	ध	नि	सां	रें	नि	सां	ध	नि॒	प	–
त	हँ	त	हँ	आ	ऽ	पु	ज	ना	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	यौ	ऽ
प	–	रें	सां	नि	नि	सां	सां	सां ध	–	नि॒	ध	प	म॑	प	–
भ	ऽ	क्ति	हे	ऽ	त	प्र	ह्	ला	ऽ	द	उ	बा	ऽ	र्‌यौ	ऽ
प	–	प	प	सां	–	सां	सां	(प)	–	म	ग	रे	म	ग	–
द्रौ	ऽ	प	दि	ची	ऽ	र	ब	ढ़ा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	यौ	ऽ

स्याम-भजन-बिनु कौन······!

[राग देवगांधार—तीनताल]

(१२)

स्याम-भजन-बिनु कौन बड़ाई ?
बल, बिद्या, धन, धाम, रूप, गुन और सकल मिथ्या सौंजाई ।।
अम्बरीष, प्रह्लाद, नृपति बलि, महा ऊँच पदवी तिन पाई ।
गहि सारँग, रन रावन जीत्यौ, लंक बिभीषन फिरी दुहाई ।।
मानी हार बिमुख दुरजोधन, जाके जोधा हे सौ भाई ।
पांडव पाँच भजे प्रभु-चरननि, रनहिं जिताए हैं जदुराई ।।
राज-रवनि सुमिरे पति-कारन असुर-बंदि तैं दिए छुड़ाई ।
अति आनन्द सूर तिहिं औसर, कीरति निगम कोटि मुख गाई ।।

भावार्थ—संसार में यदि कोई वस्तु सत्य और बड़ी है, तो वह केवल भगवान् का भजन है। मनुष्य के पास कितना ही बल हो, विद्या हो, धन हो, महल हों, रूप-गुण हों और नाना प्रकार के साजो-सामान हों, किन्तु ये सब मिथ्या हैं, नाशवान् हैं। भगवान् के भजन के बल पर अम्बरीष, प्रह्लाद, राजा बलि आदि ने महान् पद पाया है। दूसरी ओर देखिए कि लंका का राजा रावण, जिसे अपने बल और ऐश्वर्य का असीम घमण्ड था, भगवान् राम के द्वारा समर-भूमि में मारा गया और उसीका भाई विभीषण भक्त होने के नाते, दुर्बल होते हुए भी लंका का राजा बनगया। दुर्योधन-जैसे घमण्डी योधा को, जिसके महान् बलशाली १०० भाई थे, भगवान् से विमुख होकर पराजित होना पड़ा और पांडव-पुत्र जो संख्या में केवल पाँच थे, ईश्वर-भजन के प्रताप से महाभारत के युद्ध में विजयी हुए। राजरवनि (रानी) ने संकट के समय प्रभु को पुकारा, तो उसके पति को राक्षसों की कैद से मुक्त किया; उस समय अत्यन्त आनन्द मनाया गया, जिसके यश को वेदों ने करोड़ों रूपों में गाया।

स्थायी •

२				०				३				×			
रे	म	पध॒	मप	ग॒	ग॒	रे	सा	रे	नि़	सा	रे	ग	–	म	–
स्या	ऽ	मऽ	भऽ	ज	न	बि	नु	कौ	ऽ	न	ब	ड़ा	ऽ	ई	ऽ
				म	म	म	–	प	–	ध॒	प	ग॒	–	रे,	सा
				ब	ल	बि	ऽ	द्या	ऽ	ध	न	धा	ऽ	म,	रू
रे	नि़	सा	सा	रे	–	म	म	प	प	सां	–	सांरें	ग॒ं	रें	सां
ऽ	प	गु	न	औ	ऽ	र,	स	क	ल	मि	ऽ	थ्या	ऽ	सौं	ऽ
रें	नि॒	ध॒	प	रे	म	पध॒	मप								
जा	ऽ	ई	ऽ	स्याऽ	ऽ	म	भ	जन.......।							

अन्तरा •

म	–	प	ध॒	–	ध॒	ध॒	–	सां	–	सां	सां	(सां) नि॒	सां	सां	सां
अं	ऽ	ब	री	ऽ	ष	प्र	ह	ला	ऽ	द,	नृ	प	ति	ब	लि
ध॒	ध॒	–	सां	–	सां	सां	रें	सांरें	ग॒ं	रें	सां	रें	नि॒	ध॒	प
म	हा	ऽ	ॐ	ऽ	च	प	द	वीऽ	ऽ	ति	न	पा	ऽ	ई	ऽ
प	ध॒	नि॒	–	ध॒	प	पध॒	मप	ग॒	–	रेसा	रे	ग॒	–	म	–
ग	हि	सा	ऽ	रँ	ग,	रऽ	नऽ	रा	ऽ	वऽ	न	जी	ऽ	त्यौ	ऽ
रे	–	म	म	प	–	सां	सां	ग॒ं	रें	सां	सां	रें	नि॒	ध॒	प
लं	ऽ	क	बि	भी	ऽ	ष	न	फि	री	ऽ	दु	हा	ऽ	ई	ऽ

कहा गुन बरनौं स्याम……!

[राग बिहाग—तीनताल]

(१३)

कहा गुन बरनौं स्याम, तिहारे।
कुबिजा, बिदुर, दीन द्विज, गनिका, सबके काज संवारे॥
जज्ञ-भाग नहिं लियौ हेत सौं, रिषिपति पतित बिचारे।
भिल्लिनि के फल खाए भाव सौं खाटे-मीठे-खारे॥
कोमल कर गोबर्धन धारयौ जब हुते नन्द-दुलारे।
दधि-मिस आपु बँधायौ दाँवरि, सुत कुबेर के तारे॥
गरुड़ छाँड़ि प्रभु पायँ पियादे गज-कारन पग धारे।
अब मोसौं अलसात जात हौ अधम-उधारनहारे॥
कहँ न सहाय करी भक्तनि की पांडव जरत उबारे।
सूर परी जहँ बिपति दीन पर, तहाँ बिघन तुम टारे॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! मैं आपके गुणों का वर्णन किस प्रकार करूँ ? आपकी कृपा के असंख्य उदाहरण हैं, जो कहने में नहीं आ सकते। आपने समय-समय पर कुब्जा, विदुरजी, सुदामाजी एवं गणिका आदि की जीवन-नौका को पार लगाया है। प्रेम के वशीभूत होकर भीलनी के खट्टे, मीठे और खारे बेरों को तो खाया, किन्तु प्रेम-रहित ऋषियों द्वारा निकाले हुए यज्ञ के भाग को छोड़ दिया। हे नन्दबाबा के दुलारे ! आपने बाल्यावस्था में अपने कोमल हाथ पर गोवर्धन पर्वत को उठाकर इन्द्र के कोप से ब्रजवासियों की रक्षा की। अपने मित्र ग्वाल-बालों को सारा माखन खिला दिया और दंड पाने के लिए स्वयं ऊखल से बँध गए। नारद ऋषि द्वारा शापित कुबेर के पुत्रों का त्राण किया एवं गजराज की सहायता के लिए गरुड़ को छोड़कर पैदल ही भागे आए। सूरदासजी कहते हैं कि हे भक्तवत्सल प्रभो ! अब आप मेरी बारी आने पर क्यों आलस्य करते हैं ! मुझे भी भव-सागर से पार कीजिए, क्योंकि आप सदैव से अधम जीवों का उद्धार करते आए हैं। आपने प्रत्येक अवस्था में अपने सेवकों की सहायता की है। दुर्योधन द्वारा निर्मित लाख के घर से ठीक समय पर आपने पांडवों की प्राण-रक्षा की है; इसके अतिरिक्त अन्य जहाँ-कहीं भी भक्तों पर कोई संकट आया है, वहीं पर आपके द्वारा उनकी रक्षा हुई है।

• **स्थायी**

२				०				३				×			
ग	म	ग	ग	सा	सा	ग	म	प	–	ग	म	ग	–	सा	–
क	हा	गु	न	ब	र	नौं	ऽ	स्या	ऽ	म	ति	हा	ऽ	रे	ऽ

ग	म	ग	ग	प़	प़	नि़	–	सा	सा	सा	नि़	–	सा	प	मं
क	हा	गु	न	कु	बि	जा	ऽ	बि	दु	र	दी	ऽ	न	द्वि	ज
ग	म	ग	–	नि	ध	(सां)	–	नि	ध	प	मं	ग	म	ग	सा
ग	नि	का	ऽ	स	ब	के	ऽ	का	ऽ	ज	सँ	वा	ऽ	रे	ऽ
ग	म	ग	ग												
क	हा	गु	न												

अन्तरा ●

ग	–	म	प	नि	नि	प	प	नि	सां	–	सां	–	रें	सां	–
ज	ऽ	ज्ञ	भा	ऽ	ग	न	हिं	लि	यौ	ऽ	हे	ऽ	त	सौं	ऽ
नि	ध	नि	सां	नि	प	ग	म	प	नि	ध	सां	नि	–	–	–
रि	षि	प	ति	प	ति	त	बि	चा	ऽ	ऽ	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ
सां	–	नि	ध	नि	–	प	प	ध	ग	म	प	ग	म	ग	सा
भि	ऽ	ल्लि	नि	के	ऽ	फ	ल	खा	ऽ	ए	भा	ऽ	व	सौं	ऽ
नि	ध	सां	–	नि	ध	प	–	ग	म	ग	सा	ग	म	ग	ग
खा	ऽ	टे	ऽ	मी	ऽ	ठे	ऽ	खा	ऽ	रे	ऽ	क	हा	गु	न

मोहन के मुख ऊपर......!

[कहरवा : मध्यम से]

(१४)

मोहन के मुख ऊपर वारी ।
देखत नैन सबै सुख उपजत, बार-बार तातैं बलिहारी ॥
ब्रह्मा बाल-बछरुवा हरिगयौ, सो ततछन सारिखे संवारी ।
कीन्हौं कोप इन्द्र बरषारितु, लीला लाल गोबर्धनधारी ॥
राखी लाज समाज माहिं जब, नाथ-नाथ द्रौपदी पुकारी ।
तीनि लोक के ताप-निवारन, सूर स्याम सेवक-सुखकारी ॥

भावार्थ—मोहन, जो संसार को मोहित करनेवाले हैं, मैं ऐसे भगवान् के मुख की सुन्दरता पर स्वयं को वारता हूँ। उनके मोहक नेत्रों की झाँकी से संसार के प्रत्येक जीव को असीम और अतुलनीय सुख की प्राप्ति होती है, अतः प्रभु के ऐसे मोहिनी रूप के ऊपर मैं बार-बार बलिहार होता हूँ।

एक बार ब्रह्माजी ने कृष्णावतार की परीक्षा लेने के लिए भगवान् कृष्ण की ग्वाल-मण्डली एवं सभी बछड़े तथा गायों का हरण कर लिया, किन्तु भगवान् कृष्ण ने तुरन्त अपनी माया से उसी रूप और संख्या के दूसरे ग्वाल-बाल तथा गाय-बछड़े पैदा कर लिए और ब्रह्माजी को भी भ्रम में डाल दिया। इन्द्र ने ब्रजवासियों पर अपना क्रोध प्रकट करके प्रलयकारिणी वर्षा द्वारा सारे ब्रज को डुबाने की चेष्टा की, किन्तु श्री नन्दलाल ने गोवर्धन-धारण लीला करके अपने सखा एवं समस्त ब्रजवासियों की रक्षा की। भरी सभा के मध्य जिस समय दुष्ट दुःशासन द्रौपदी का चीर खींचकर उसकी लाज लूट लेना चाहता था, उस समय द्रौपदी की करुण पुकार पर स्वयं भगवान् आए और चीर इतना बढ़ा दिया कि खींचते-खींचते दुःशासन के हाथ थक गए; इस प्रकार उसकी लाज बचाई। सूरदासजी के कहने का आशय यही है कि भगवान् कृष्ण तीनों लोकों के दुःखों को हरनेवाले और सदैव अपने सेवकों को सुख प्रदान करनेवाले हैं।

• स्थायी

×				०				×				०			
नि़	—	नि़	नि़	सा	—	रे	रे	ग	—	म	ग	रे	—	सा	—
मो	ऽ	ह	न	के	ऽ	मु	ख	ऊ	ऽ	प	र	वा	ऽ	री	ऽ
सा	प	प	प	प	—	प	म	प	ध	नि॒	ध	प	प	म	मग
दे	ऽ	ख	त	नै	ऽ	न	स	बै	ऽ	सु	ख	उ	प	ज	तऽ
ग	—	ग	ग	—	ग	गम	गम	रे	ग	म	ग	रेग	रेसा	सा	—
बा	ऽ	र	बा	ऽ	र	ताऽ	ऽऽ	तैं	ऽ	ब	लि	हाऽ	ऽऽ	री	ऽ

• अन्तरा

नि॒	—	नि॒	—	नि॒	—	नि॒	नि॒	ध	ध	ध	नि॒	ध	प	प	प
ब्र	ऽ	ह्मा	ऽ	बा	ऽ	ल,	ब	छ	रु	वा	ऽ	ह	रि	ग	यो
प	ध	म	म	रे	ग	सा	—	रे	ग	म	(प)	म	—	ग	—
सो	ऽ	त	त	छ	न	सा	ऽ	रि	खे	सैं	ऽ	वा	ऽ	री	ऽ
म	—	म	—	म	प	प	प	—	ध	नि॒	ध	प	म	म	म
की	ऽ	न्हौं	ऽ	को	ऽ	प,	इं	ऽ	द्र	ब	र	षा	ऽ	रि	तु
सा	ग	ग	रे	ग	म	म	मग	रे	ग	म	ग	रेग	रेसा	सा	—
ली	ऽ	ला	ऽ	ला	ऽ	ल	गोऽ	ब	र्	ध	न	धाऽ	ऽऽ	री	ऽ

गोबिंद गाढ़े दिन के······!

[राग तिलककामोद—कहरवा]

(१५)

गोबिंद गाढ़े दिन के मीत ।
गज अरु ब्रज प्रह्लाद, द्रौपदी, सुमिरत ही निहचीत ।।
लाखागृह पांडवनि उबारे, साक-पत्र मुख नाए ।
अम्बरीष-हित साप निवारे, ब्याकुल चले पराए ।।
नृप-कन्या कौ ब्रत प्रतिपारयौ, कपट बेष इक धारयौ ।
तामैं प्रगट भए श्रीपतिजू, अरि-गन-गर्ब प्रहारयौ ।।
कोटि छयानबै नृप-सेना सब, जरासन्ध बँध छोरे ।
ऐसें जन परतिज्ञा राखत, जुद्ध प्रगट करि जोरे ।।
गुरु-बांधव-हित मिले सुदामहिं, तन्दुल पुनि-पुनि जाँचत ।
भगत-बिरह कौ अतिहीं कादर, असुर-गर्ब-बल नासत ।।
संकट-हरन-चरन हरि प्रगटे, बेद बिदित जस गावै ।
सूरदास ऐसे प्रभु तजिकै, घर-घर देव मनावै ।।

भावार्थ—मुसीबत के दिनों में भगवान् ही मित्र होते हैं । गजराज, ब्रजमण्डल, भक्तराज प्रह्लाद एवं द्रौपदी की विपत्ति के समय केवल भगवान् ही काम आए थे । लाख के बने हुए घर से पाण्डवों की प्राण-रक्षा करना, द्रौपदी की पतीली में लगे हुए एक शाक-कण से महर्षि दुर्वासा तथा उनके शिष्यों की भूख को निवृत्त करना और दुर्वासाजी के शाप से महाराज अम्बरीष की प्राण-रक्षा करना आदि कार्यों से पुष्टि होती है कि मुसीबत के समय प्रभु अवश्य सहायता करते हैं । राजकन्या की प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिए, उसके पति कपटी विष्णु में सचमुच प्रकट होकर कन्या के पिता के शत्रु-बल का संहार कर देना तथा जरासंध राक्षस की कैद से करोड़ों सैनिकों व राजाओं को मुक्त करना आदि असाधारण कार्य भगवान् के द्वारा ही हुए हैं । प्रभु ने इसी प्रकार सदैव अपने भक्तों की प्रतिज्ञा को पूरा किया है । अपने गुरुभाई सुदामा के चावल खानेवाले श्री श्यामसुन्दर सदैव भक्तों के बिछोह से बेचैन हो जाया करते हैं तथा राक्षसों के बल और घमण्ड को चूर करते रहते हैं । सूरदासजी का कहना है कि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने भक्तों के कष्ट हरने के लिए अवतार लिया था, दुनिया इस बात को जानती है । ऐसे प्रभु को छोड़कर—जिनका यश वेद भी गारहे हैं—अन्य देवताओं को मनाना सरासर मूर्खता है ।

स्थायी

×				०				×				०			
म़	प़	नि़	नि़	सा	–	रेग	सारे	म	ग	सा	नि़	सा	–	–	–
गो	ऽ	बिं	द	गा	ऽ	ढ़ेऽ	ऽऽ	दि	न	के	ऽ	मी	ऽ	ऽ	त

सा	ग	ग	ग	ग	ग	ग	ग	म	–	म	ग	रे	ग	रे	–
ग	ज	अ	रु	ब्र	ज	प्र	हृ	ला	ऽ	द	द्रौ	ऽ	प	दी	ऽ
सा	सा	रे	रे	ग	रे	ग	(प)	म	–	–	–	ग	रे	सा	नि़
सु	मि	र	त	ही	ऽ	नि	हृ	ची	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	त

● अन्तरा

रे	–	म	–	प	प	प	–	रे	म	प	ध	म	ग	रे	–
ला	ऽ	खा	ऽ	गृ	हृ	पां	ऽ	ड	व	नि	उ	बा	ऽ	रे	ऽ
म	–	म	म	–	म	प	ध	म	–	ग	–	गम	गम	रेग	सा
सा	ऽ	क	प	ऽ	अ	मु	ख	ना	ऽ	ए	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ
ग	–	ग	ग	–	ग	ग	ग	रेग	म	म	म	मग	रेग	सा	–
अं	ऽ	ब	री	ऽ	ष	हि	त	साऽ	ऽ	प	नि	वाऽ	ऽऽ	रे	ऽ
सा	–	रे	रे	सा	रे	ग	(प)	म	–	–	–	ग	रे	सा	नि़
ब्या	ऽ	कु	ल	च	ले	ऽ	प	रा	ऽ	ऽ	ऽ	ए	ऽ	ऽ	ऽ

प्रभु तेरौ बचन भरोसौ……!

[राग देस—तीनताल]

(१६)

प्रभु तेरौ बचन भरोसौ साँचौ।
पोषन-भरन बिसंभर साहब, जो कलपै सो काँचौ॥
जब गजराज ग्राह सौं अटक्यौ, बली बहुत दुख पायौ।
नाम लेत ताही छिन हरिजू, गरुड़हिं छाँड़ि छुड़ायौ॥
दुस्सासन जब गही द्रौपदी, तब तिहिं बसन बढ़ायौ।
सूरदास प्रभु भक्तबछल हैं, चरन-सरन हौं आयौ॥

भावार्थ—भगवान् का भरोसा सदैव सच्चा होता है। संसार का वे भरण-पोषण करनेवाले और जगत् के स्वामी हैं। जो व्यक्ति इन वाक्यों में विश्वास नहीं रखते, उन्हें विवेकहीन समझना चाहिए। गजराज की कथा से इसका प्रमाण मिलता है। जिस समय गजराज ग्राह से हार मानकर मौत के मुँह में जारहा था, उसकी सच्ची और करुण पुकार पर भगवान् गरुड़ को भी छोड़कर भागे आए और गज की प्राण-रक्षा की। इसी प्रकार द्रौपदी की करुण पुकार पर दुःशासन की सभा में उसका चीर बढ़ाया। सूरदासजी कहते हैं कि भगवान् भक्तवत्सल हैं, अतः वह मुझे भी इस अगम संसार-सागर से पार करेंगे, इसीलिए मैं उनकी शरण में आया हूँ।

स्थायी •

२				०				३				×			
रेग॒	सारे	म	प	नि	सां	नि॒	धप	म	गरे	सानि॒	सा	(म)	-	ग	रे
प्रऽ	भुऽ	ते	रौ	ब	च	न	भऽ	रो	ऽऽ	सौऽ	ऽ	साँ	ऽ	चौ	ऽ
रेग॒	सारे	म	प	रे	-	रे	रे	प	प	प	ध	म	-	ग	रे
प्रऽ	भुऽ	ते	रौ	पो	ऽ	ष	न	भ	र	न	बि	सं	ऽ	भ	र
											सां				
रे	ग	सा	सा	ग॒	सारे	म	म	प	म	प	नि॒	ध	-	प	-
सा	ऽ	ह	ब	जो	ऽ	क	ल	पै	ऽ	सो	ऽ	काँ	ऽ	चौ	ऽ

अन्तरा •

०				३				×				२			
म	म	प	प	नि	-	नि	सां	-	सां	सां	-	रें	नि॒	सां	-
ज	ब	ग	ज	रा	ऽ	ज	ग्रा	ऽ	ह	सौं	ऽ	अ	ट	क्यौ	ऽ
प	नि	-	नि	सां	नि	सां	सां	निसां	रें	सां	रें	नि॒	-	ध	प
ब	ली	ऽ	ब	हु	त	दु	ख	पाऽ	ऽ	ऽ	ऽ	यौ	ऽ	ऽ	ऽ
रें	-	रें	रें	गं॒	रें	सां	-	रेंगं	मं	मं	मंगं	रें	गं	सां	-
ना	ऽ	म	ले	ऽ	त	ता	ऽ	हीऽ	ऽ	छि	नऽ	ह	रि	जू	ऽ
प	नि	नि	नि	नि	सां	नि	सां	प	ध	म	रे	रेग॒	सारे	म	प
ग	रु	ड़	हिं	छाँ	ऽ	ड़ि	छु	ड़ा	ऽ	यौ	ऽ	प्रऽ	भुऽ	ते	री

कहा कमी जाके राम……!

[ताल—कहरवा]

(१७)

कहा कमी जाके राम धनी।
मनसा-नाथ मनोरथ-पूरन, सुख-निधान जाकी मौज घनी ॥
अर्थ, धर्म अरु काम, मोक्ष फल, चारि पदारथ देत गनी।
इन्द्र-समान हैं जाके सेवक, नर बपुरे की कहा गनी ॥
कहा कृपिन की माया गनियै, करत फिरत अपनी-अपनी।
खाइ न सकै खरचि नहिं जानै, ज्यौं भुवंग-सिर रहत मनी ॥
आनँद-मगन राम-गुन गावै, दुख-सँताप की काटि तनी।
सूर कहत, जे भजत राम कौं, तिनसौं हरि सौं सदा बनी ॥

भावार्थ—अतुल ऐश्वर्य के भंडार भगवान् श्रीराम पर जिन व्यक्तियों को भरोसा है, उन्हें संसार में किसी वस्तु की कमी नहीं रह सकती। हृदयों के स्वामी, सुख के भण्डार और अत्यन्त कृपालु भगवान् प्रत्येक मनोरथ (मन की इच्छा) को पूर्ण करनेवाले हैं। जो उनमें निष्ठा एवं विश्वास रखते हैं, उन्हें चारों पदार्थ—धर्म, अर्थ काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है। मनुष्य से ऐसे भगवान् की समता क्या हो सकती है, जिनके राजा इन्द्र के समान सेवक हैं। मनुष्य तो बेचारा किंचित् धन पाकर एकदम कंजूसी दिखाने लगता है अथवा अहंकार के वशीभूत होकर किसी को अपने समान समझता ही नहीं और अपनी-अपनी ही तानता है। द्रव्य से उसको इतना मोह बढ़ जाता है, जैसे सर्प को अपनी मणि से होता है। कृपण मनुष्य न धन को खा सकता है और न खर्च ही कर सकता है।

इस पद में भक्तराज सूरदास के कहने का आशय यही है कि मनुष्यों को द्रव्य में मोह न रखकर भगवान् रामजी के गुण-गान में मन लगाना चाहिए। ऐसा करने से उनके हर प्रकार के दुःख स्वयं ही समाप्त हो जाएँगे। जो मनुष्य या जीव प्रभु का भजन करते रहेंगे, भगवान् भी उन पर सदैव कृपा करते रहेंगे।

• स्थायी

×				०				×				०			
ध़	सा	-	रे	ग	-	-	-	ग	ध	प	मं	ग	-	सा	सा
क	हा	ऽ	क	मी	ऽ	ऽ	ऽ	जा	ऽ	के	ऽ	रा	ऽ	म	ध
सा	-	-	-	रेग	रेसा	ध़	प़								
नी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ								
सा	सा	रे	-	सा	-	ग	ग	सा	-	प	प	ग	रे	सा	सा
म	न	सा	ऽ	ना	ऽ	थ	म	नो	ऽ	र	थ	पू	ऽ	र	न

ग	प	ग	प	–	प	प	ध	प	–	ग	रे	ग	सा	रे	–
सु	ख	नि	धा	ऽ	न	जा	ऽ	की	ऽ	मौ	ऽ	ज	घ	नी	ऽ
ग	ध	प	म॑												
जा	ऽ	के	ऽ	इत्यादि											

अन्तरा •

ग	प	ग	प	–	प	ध	प	ग	प	प	ग	–	रे	सा	सा
अ	ऽ	र्थ	ध	ऽ	र्म	अ	रु	का	ऽ	म	मो	ऽ	क्ष	फ	ल
सा	–	रे	रे	सा	–	ग	ग	सा	–	प	प	ग	–	–	–
चा	ऽ	रि	प	दा	ऽ	र	थ	दे	ऽ	त	ग	नी	ऽ	ऽ	ऽ
ग	–	प	ध	सां	–	सां	ध	सां	ध	प	प	ध	प	ग	ग
इं	ऽ	द्र	स	मा	ऽ	न	हैं	ऽ	जा	ऽ	के	से	ऽ	व	क
ग	ध	प	प	ग	रे	ग	रे	सा	रे	–	प	ग	–	–	–
न	र	ब	पु	रे	ऽ	की	ऽ	क	हा	ऽ	ग	नी	ऽ	ऽ	ऽ
ग	ध	प	म॑												
जा	ऽ	के	ऽ	इत्यादि											

तुम्हरैं भजन सबहि······!

[राग तिलककामोद—तीनताल]

(१८)

तुम्हरैं भजन सबहि सिंगार।
जो कोउ प्रीति करै पद-अंबुज, उर मंडत निरमोलक हार॥
किंकिनि नूपुर पाट पटंबर, मानौ लिये फिरैं घर-बार।
मानुष-जनम पोत नकली ज्यौं, मानत भजन-बिना बिस्तार॥
कलिमल दूरि करन के काजें, तुम लीन्हौ जग में अवतार।
सूरदास प्रभु तुम्हरे भजन-बिनु, जैसैं सूकर-स्वान-सियार॥

भावार्थ—हे प्रभु ! आपका भजन ही सबका शृङ्गार है। जो कोई भी आपके चरण-कमलों से प्रीति करता है, उसी के गले में आपकी भक्ति का अमूल्य हार शोभित हो जाता है। आपके नाना प्रकार के आभूषणों अथवा वस्त्रों में ध्यानमग्न व्यक्तियों के साथ घर से भी अधिक मनोरंजन के सामान रहते हैं। इस पद में श्री सूरदास भगवत्-भजन को मानुष-जीवन का सार बतलाते हुए कहते हैं कि बिना प्रभु की आराधना के जीवन बिलकुल बेकार है। भगवान् ने केवल अवतार ही इसलिए लिया था कि उनकी अमर कीर्ति गा-गाकर कलियुग के प्राणियों की मुक्ति हो जाए। अतः जो मनुष्य भगवत्-भजन नहीं करते, उनका जीवन जंगली पशुओं—सूअर, कुत्ता और गीदड़—के समान समझा जाएगा।

• स्थायी

२				०				३				×			
प़	नि़	सा	रे	ग	सा	रे	प	म	गरे	सा	रे	प	–	–	प
तु	म्ह	रैं	ऽ	भ	ज	न	स	ब	हिऽ	सिं	ऽ	गा	ऽ	ऽ	र
प	ध	म	म	ग	–	सा	सा	रे	प	म	म	ग	–	सा	सा
जो	ऽ	को	उ	प्री	ऽ	ति	क	रै	ऽ	प	द	अं	ऽ	बु	ज
रे	रे	म	म	प	प	सां	सां	पध	नि॒ध	म	म	मप	गम	रेग	सा
उ	र	मं	ऽ	ड	त	नि	र	मोऽ	ऽऽ	ल	क	हाऽ	ऽऽ	ऽऽ	र

• अन्तरा

म	–	प	प	सां	–	सां	प	नि	ध	प	ग	म	–	म	–
किं	ऽ	कि	नि	नू	ऽ	पु	र	पा	ऽ	ट	प	टं	ऽ	ब	र
प	ध	ध	म	म	म	प	ग	म	ग	रे	ग	म	–	–	–
मा	ऽ	नौ	ऽ	लि	ये	ऽ	फि	रैं	ऽ	घ	र	बा	ऽ	ऽ	र
रे	ग॒	रे	ग॒	सा	सा	सा	रे	–	म	प	ध	(नि)	–	प	–
मा	ऽ	नु	ष	ज	न	म	पो	ऽ	त	न	क	ली	ऽ	ज्यौं	ऽ
रे	–	म	म	प	प	सां	सां	पध	नि॒ध	म	–	मप	गम	रेग	सा
मा	ऽ	न	त	भ	ज	न	बि	नाऽ	ऽऽ	बि	ऽ	स्ता	ऽऽ	ऽऽ	र

हरि, तेरौ भजन कियौ······!

[राग मिश्र दुर्गा—ताल रूपक]

(१६)

हरि, तेरौ भजन कियौ न जाइ।
कह करौं, तेरी प्रबल माया देति मन भरमाइ॥
जबै आवौं साधु-संगति, कछुक मन ठहराइ।
ज्यौं गयंद अन्हाइ सरिता, बहुरि वहै सुभाइ॥
बेष धरि-धरि हरयौ पर-धन, साधु-साधु कहाइ।
जैसें नटवा लोभ-कारन करत स्वाँग बनाइ॥
करौं जतन, न भजौं तुमकौं, कछुक मन उपजाइ।
सूर प्रभु की सबल माया, देति मोहि भुलाइ॥

भावार्थ—हे भगवान् ! आपका भजन नहीं होता। क्या कहूँ, आपकी माया मेरे मन को भरमाए रहती है। कभी-कभी सौभाग्य से यदि साधुओं का सत्संग मिल जाता है, तो हृदय को कुछ शान्ति मिल जाती है; इसके पश्चात् वही माया का चक्र जकड़ लेता है। मेरी दशा ठीक उस हाथी के समान है, जो गंगा-स्नान करने के बाद भी पुनः अपवित्र हो जाता है। अथवा मेरी दशा ठीक उस नट (बाजीगर) के समान है, जो लोभ के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के वेष धारण करके दुनिया को तमाशा दिखाता है। इसी प्रकार मैं (मनुष्य) भी अनेकों कपट-छल करके दुनिया को ठगता हूँ और नादान लोग फिर भी मुझे अच्छा समझते हैं। सूरदासजी कहते हैं कि हे प्रभु ! यह सब आपकी माया की भूल-भुलैया है, जिसमें मेरे-जैसे मनुष्य चक्कर काट रहे हैं। ये व्यक्ति आपका भजन करने का प्रयत्न भी नहीं करते; यदि करें, तो कुछ-न-कुछ शांति अवश्य मिले।

स्थायी •

२		३		×			२		३		×		
म	म	प	ध	म	ध	प	म	रे	सा	रे	प	-	प
ह	रि	ते	रौ	भ	ज	न	कि	यौ	ऽ	न	जा	ऽ	इ
म	म	प	ध	ध	प	ध	म	ग	रे	सा	रे	म	ग
ह	रि	ते	रौ	क	ह	क	रौं	ऽ	ते	री	प्र	ब	ल
रे	-	रे	-	ध	-	सां	ध	म	प	ध	सां	-	ध
मा	ऽ	या	ऽ	दे	ऽ	ति	म	न	भ	र	मा	ऽ	इ

● अन्तरा

०			२		३		०			२		३	
म	प	–	ध	–	सां	–	सां	–	सां	सां	–	रें	सां
ज	बै	ऽ	आ	ऽ	वौं	ऽ	सा	ऽ	धु	सं	ऽ	ग	ति
ध	रें	रें	सां	सां	ध	म	प	–	प	ध	म	प	ध
क	छु	क	म	न	ठ	ह	रा	ऽ	इ	ह	रि	ते	रौ
म	ध	ध	ध	ध	सां	ध	म	–	प	रे	रे	सा	–
ज्यौं	ऽ	ग	यं	द	अ	न्	हा	ऽ	इ	स	रि	ता	ऽ
ध	सां	सां	ध	म	प	ध	सां	ध	ध	म	म	प	ध
ब	हु	रि	व	है	ऽ	सु	भा	ऽ	इ	ह	रि	ते	रौ

माधौ जू, मन माया-बस......!

[ताल कहरवा]

(२०)

माधौ जू, मन माया-बस कीन्हौ।
लाभ-हानि कछु समुझत नाहीं, ज्यौं पतंग तन दीन्हौ॥
गृह दीपक, धन तेल, तूल तिय, सुत ज्वाला अति जोर।
मैं मतिहीन मरम नहिं जान्यौ, पर्‍यौ अधिक करि दौर॥
बिवस भयौं नलिनी के सुक ज्यौं, बिन गुन मोहि गह्यौ।
मैं अज्ञान कछू नहिं समुझ्यौ, परि दुख-पुञ्ज सह्यौ॥
बहुतक दिवस भए या जग मैं, भ्रमत फिर्‍यौ मतिहीन।
सूर स्यामसुन्दर जौ सेवै, क्यौं होवै गति दीन॥

भावार्थ—हे प्रभु! मेरा मन आपकी माया के वशीभूत हो गया। मेरी दशा ठीक उस पतंगे की तरह हो गई, जो दीपक की लौ पर बिना कुछ सोचे-समझे अपनी जान गँवा देता है। मैं भी इस गृह-रूपी दीपक पर—जिसमें धन-रूपी तेल, स्त्री-रूपी बाती और सुत (पुत्र)-रूपी लौ थी—बिना कुछ सोच-विचार के झपटकर गिर पड़ा। अथवा मेरी दशा ठीक उस भौंरे के समान हो गई, जो कमलिनी के सत्संग में थोड़ा-सा सुख प्राप्त करके रात-भर उसकी कैद में पड़ा रहा। इसी प्रकार मैं भी फँस गया और अनेक दुःख सहता रहा। इस संसार में मुझ मतिमन्द को भटकते-भटकते बहुत दिन होगए। सूरदासजी के कहने का आशय यही है कि यदि मनुष्य श्री श्याम-सुन्दर की सेवा में लगा रहता, तो उसकी इस प्रकार दीनों-जैसी दशा कदापि नहीं हो सकती थी।

स्थायी •

×				०				×				०			
												ग			
नि़	-	सा	रे	म	-	-	-	म	ग	रे	सा	रे	-	-	-
मा	ऽ	धौ	ऽ	जू	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ग	रे	रेग	म	म	ग	सा	नि़	सा	-	सा	-	ग	रे	म	ग
म	न	माऽ	ऽ	या	ऽ	ब	स	की	ऽ	न्हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
प	ध	प	-	मग	रेसा	रे	ग	ग	-	सा	-	-	-	-	-
म	न	मा	ऽ	या	ऽ	ब	स	की	ऽ	न्हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
				सा											
सा	-	रे	सा	नि़	सा	सा	-सा	-ग	ग	ग	गरे	रेग	म	ग	-
ला	ऽ	भ	हा	ऽ	नि	क	ऽछु	ऽस	मु	झ	तऽ	नाऽ	ऽ	हीं	ऽ
ग										म					
प	-	प	प	-	प	म	ग	रे	रेम	ग	-	-	-	-	-
ज्यौं	ऽ	प	तं	ऽ	ग	त	न	दी	ऽऽ	न्हो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा •

सा	ध	ध	-	ध	ध	प	प	ग	प	ग	रे	-	रे	सा	सा
गृ	ह	दी	ऽ	प	क	ध	न	ते	ऽ	ल	तू	ऽ	ल	ति	य
सा	सा	रे	-	ग	रे	ग	प	म	-	-	-	म	रे	ग	रे
सु	त	ज्वा	ऽ	ला	ऽ	भ्र	ति	जो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
ग	प	प	प	ध	सां	-	सां	नि	सां	ध	प	म	प	प	ग
मैं	ऽ	म	ति	ही	ऽ	न	म	र	म	न	हिं	जा	ऽ	न्यो	ऽ
प	ध	-	ध	म	प	प	ग	म	-	-	-	ग	रे	सा	सा
प	र्यौं	ऽ	भ्र	धि	क	क	रि	दौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र

अब हौं माया-हाथ······!

[राग पहाड़ी—तीनताल]

(२१)

अब हौं माया-हाथ बिकानौ ।
परबस भयौ पसू ज्यौं रजु-बस, भज्यौ न श्रीपति रानौ ।।
हिंसा-मद-ममता-रस भूल्यौ, आसाहीं लपटानौ ।
याही करत अधीन भयौ हौं, निद्रा अति न अघानौ ।।
अपने हीं अज्ञान-तिमिर मैं, बिसरयौ परम ठिकानौ ।
सूरदास की एक आँखि है, ताहू मैं कछु कानौ ।।

भावार्थ—इस पद में भक्तराज श्री सूरदास परब्रह्म परमात्मा की माया का वर्णन करते हुए, मनुष्यों की वर्तमान हालत को स्पष्ट करते हुए कहते हैं—हे प्रभु ! अब मैं आपकी माया के जाल में फँस गया हूँ। इस माया-जाल में, मैं ठीक उस प्रकार विवश हो गया हूँ, जैसे कोई रस्सी से बँधा हुआ पशु होता है। हिंसा, मोह और घमण्ड में लिपटा हुआ हर समय इच्छाओं को पूरी करने की तरकीबें सोचता रहता हूँ। सच तो यह है कि इच्छाओं का पक्का दास बन गया हूँ। इतना सोने पर भी मेरी नींद नहीं भरती। इस अज्ञान-रूपी प्रबल अन्धकार में पड़ा हुआ, मैं अपनी मंजिल को ही भूल गया हूँ। मुझ अन्धे व्यक्ति को आपकी भक्ति-रूपी एक आँख मिल पाई है, वह भी पूर्ण नहीं है।

• **स्थायी**

२				०				३				×			
सा	रे	सा	नि़	सा	प	मं	प	ग	–	सा	सा	सा	–	सा	–
अ	ब	हौं	ऽ	ऽ	मा	या	ऽ	हा	ऽ	थ	बि	का	ऽ	नौ	ऽ
सा	रे	सा	नि़	ग	रे	ग	रे	सा	सा	–	सा	प	–	मं	प
अ	ब	हौं	ऽ	प	र	ब	स	भ	यौ	ऽ	प	सू	ऽ	ज्यौं	ऽ
ग	म	ग	ग	सा	ग	–	ग	मं	ग	मं	ध	प	–	मं	प
र	जु	ब	स	भ	ज्यौ	ऽ	न	श्री	ऽ	प	ति	रा	ऽ	ऽ	ऽ
ग	मं	ग	–												
ऽ	ऽ	नौ	ऽ	माया-हाथ············।											

• **अन्तरा**

०				३				×				२			
सा	–	सा	–	सा	सा	सा	सा	नि़	सा	ध़	नि़	सा	म	ग	–
हिं	ऽ	सा	ऽ	म	द	म	म	ता	ऽ	र	स	भू	ऽ	ल्यौ	ऽ

सा	-	ग	-	मं	ग	मं	ध	प	-	मं	प	ग	मं	ग	-
आ	ऽ	सा	ऽ	हीं	ऽ	ल	प	टा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नौ	ऽ
ग	-	प	ध	सां	-	सां	सां	नि	सां	ध	प	मंप	धप	ग	-
या	ऽ	ही	ऽ	क	र	त	अ	धी	ऽ	न	भ	यौऽ	ऽऽ	हौं	ऽ
म	-	म	-	प	ध	नि	सां	नि	ध	प	मं	ग	मं	ग	-
नि	ऽ	द्रा	ऽ	अ	ति	न	अ	घा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	नौ	ऽ

माया हाथ............।

माया देखत ही जु......!

[राग बिलासखानी तोड़ी—तीनताल]

(२२)

माया देखत ही जु गई।
ना हरि-हित, ना तू-हित, इनमैं एकौ तौ न भई।।
ज्यौं मधुमाखी सँचति निरंतर, बन की ओट लई।
ब्याकुल होत हरे ज्यौं सरबस, आँखिनि धूरि दई।।
सुत-संतान-स्वजन-बनिता-रति, घन समान उनई।
राखे सूर पवन पाखँड हति, करी जो प्रीति नई।।

भावार्थ—माया की भूल-भुलैया में पड़कर मनुष्य का जीवन देखते-देखते समाप्त होगया। इस माया ठगनी के कारण न तो वह परमात्मा से प्रेम कर सका और न अपना ही भला कर सका। शहद की मक्खियाँ जिस प्रकार किसी ओट की जगह में अपना छत्ता रखकर शहद इकट्ठा करती हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी माया इकट्ठी करने में लगा रहा। किन्तु जब किसी ने उसकी आँखों में धूल झोंककर उसका सर्वस्व ले लिया, तब वह उसी तरह बेचैन होगया, जिस तरह शहद की मक्खियाँ, छत्ता तोड़े जाने पर हो जाया करती हैं। शनैः-शनैः माया का परिवार और बढ़ता गया—स्त्री, धन, कुटुम्ब, सन्तान तथा अपने आदमियों की मोह-रूपी घटा ने घिरकर निर्मल आकाश के समान मनुष्य के मन को ढक लिया। यहाँ श्री सूरदासजी के कहने का यही भाव है कि जिन व्यक्तियों ने ऐसे समय में प्रभु के चरणों में प्रीति बढ़ाई, उनके मन पर छाया हुआ (ऊपर कहा हुआ) मोह-रूपी घटा का पाखण्ड भगवान् की भक्ति-रूपी आँधी द्वारा तुरन्त दूर होगया।

स्थायी •

२				०				३				×			
सा	रे॒	ग॒	प	पध॒	नि॒	ध॒	म	रे॒	-	ग॒	रे॒	सा	-	-	-
मा	ऽ	या	ऽ	देऽ	ऽ	ख	त	ही	ऽ	जु	ग	ई	ऽ	ऽ	ऽ

–	–	–	–	सा	रे	ग	ग	रे	रे	नि	ध	सा	–	सा	सा
ऽ	ऽ	ऽ'	ऽ	ना	ऽ	ह	रि	हि	त	ना	ऽ	तू	ऽ	हि	त
रे	रे	सा	–	प	–	ध	–	सां	–	रें	गं	रें	–	नि	ध
इ	न	मैं	ऽ	ए	ऽ	कौ	ऽ	तौ	ऽ	न	भ	ई	ऽ	ऽ	ऽ
म	ग	सा	–	पध	नि	ध	म								
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	दे	ऽ	ख	त								

● अन्तरा

०				३				×				२			
प	–	प	–	ध	–	ध	–	ध	सां	सां	सां	रें	–	सां	सां
ज्यौं	ऽ	म	धु	मा	ऽ	खी	ऽ	सं	च	ति	नि	रं	ऽ	त	र
ध	ध	ध	–	सां	–	रें	रें	(नि)रें	–	नि	ध	म	ग	प	–
ब	न	की	ऽ	ओ	ऽ	ट	ल	ई	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
प	ध	नि	ध	म	–	ग	रे	ग	–	म	म	ग	रे	सा	सा
ब्या	ऽ	कु	ल	हो	ऽ	त	ह	रे	ऽ	ज्यौं	ऽ	स	र	ब	स
प	–	ध	ध	सां	–	रें	गं	रें	–	नि	ध	म	ग	प	–
आँ	ऽ	खि	नि	धू	ऽ	रि	द	ई	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

देखत ही..........।

कहत हे, आगैं जपिहैं......!

[राग अहीरभैरव—तीनताल]

(२३)

कहत हे, आगैं जपिहैं राम ।
बीचहिं भई और की औरै, पर्‌यौ काल सौं काम ।।
गरभ-बास दस मास अधोमुख, तहँ न भयौ बिस्राम ।
बालापन खेलतहीं खोयौ, जोबन जोरत दाम ।।
अब तौ जरा निपट नियरानी, कर्‌यौ न कछुवै काम ।
सूरदास प्रभु कौं बिसरायौ, बिना लिऐं हरि-नाम ।।

भावार्थ—अरे मानव ! तेरा यह कहना कि मैं आगे चलकर भगवान् श्रीराम का भजन करूँगा, सर्वथा असत्य है। तुझे क्या पता कि तेरा जीवन कितने दिनों का है ? तू कहता है कि आगे भजन करूँगा, किन्तु बीच में ही तेरी मृत्यु होगई तब क्या होगा ? इस संसार मे न तुझे अवकाश मिल सकता है और न विश्राम। तूने दस महीने गर्भ में उल्टे लटके रहकर ही क्या विश्राम पालिया ? और अब बचपन भी खेल-कूद में समाप्त कर दिया। अब तेरी युवावस्था आई, तो पैसा कमाने में मस्त होगया। अन्त में बुढ़ापा भी आपहुँचा; किन्तु अब सब इन्द्रियाँ शिथिल होगईं, अतः कोई काम नहीं हो सकता। भक्तराज सूरदासजी कहते हैं कि अन्त तक तू प्रभु का भजन कर ही नहीं पाया।

स्थायी •

२				०				३				×			
															म
															क
प	नि॒	ध	प	ग	प	म	ग	रे॒	सा	नि॒	सारे॒	ग	म	म	म
ह	त	हे	ऽ	आ	ऽ	गें	ऽ	ज	पि	हैं	ऽऽ	रा	ऽ	म,	क
प	नि॒	ध	प	ग	–	म	ग	रे॒	सा	–	नि॒	–	नि॒	सा	–
ह	त	हे	ऽ	बी	ऽ	च	हिं	भ	ई	ऽ	औ	ऽ	र	की	ऽ
रे॒	रे॒	सा	–	रे	म	–	प	–	ध	नि॒	सां	नि॒	नि॒	ध	ध
औ	ऽ	रै	ऽ	प	रयौ	ऽ	का	ऽ	ल	सौं	ऽ	का	ऽ	ऽ	ऽ
प	प	म	म												
ऽ	ऽ	म,	क	हत हे, इत्यादि।											

अन्तरा •

०				३				×				२			
रे	म	म	म	प	प	प	ध	नि॒	–	सां	सां	रें॒	–	सां	सां
ग	र	भ	बा	ऽ	स	द	स	मा	ऽ	स	अ	धो	ऽ	मु	ख
सां	रें॒	गं	मं	रें	सां	सां	–	नि॒	नि॒	ध	प	नि॒	रें॒	सां	सां
त	हूँ	न	भ	यौ	ऽ	बि	ऽ	स्रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	म
नि॒	ध	सां	नि॒	रें॒	रें॒	सां	–	नि॒	ध	प	प	ग	प	म	–
बा	ऽ	ला	ऽ	प	न	खे	ऽ	ल	त	हीं	ऽ	खो	ऽ	यौ	ऽ
रे	–	म	म	प	ध	नि॒	सां	नि॒	नि॒	ध	ध	प	–	म,	म
जो	ऽ	ब	न	जो	ऽ	र	त	दा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	म,	क

हत हे……।

रे मन, जग पर जानि……!

[ताल कहरवा]

(२४)

रे मन, जग पर जानि ठगायौ।
धन-मद, कुल-मद, तरुनी कैं मद, भव-मद, हरि बिसरायौ ॥
कलि-मल-हरन, कालिमा-टारन, रसना स्याम न गायौ।
रसमय जानि सुवा सेमर कौं चोंच घालि पछितायौ ॥
कर्म-धर्म, लीला-जस, हरि-गुन, इहिं रस छाँव न आयौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु कहु कैसें सुख पायौ ॥

भावार्थ—अरे मन ! तू सब-कुछ जानते हुए भी संसार की ठगाई में आगया। धन, स्त्री, ल और सांसारिक सुखों के घमण्ड में तू भगवान् को भूल गया। तूने अपनी जिह्वा से कलियुग के संताप और स्याही को मिटानेवाले श्रीहरि का गुण-गान नहीं किया। तूने सम्भवतः संसार को इस प्रकार समझा, जिस प्रकार तोता सेमल के फूल को रस-भरा समझकर चोंच मार देता है और बाद में उसको रसहीन पाकर पछताता है। इसी प्रकार तूने भी संसार को रसयुक्त समझ लिया, किन्तु असली रस भगवान् की लीला, सत्कर्म एवं प्रभु के गुण-गान में ही मिला करता है। भक्तशिरोमणि सूरदासजी कहते हैं कि बिना प्रभु के गुण-गान के तुझे वास्तविक सुख एवं रस की प्राप्ति न हो सकी और अन्त तक पछताता ही रहा।

• स्थायी

×				०				×				०			
सां	–	–	–	निसां	नि	धनि	ध	पध	प	मप	म	प	ग	–	–
रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	म	न	ऽ	ऽ
प	ध	प	म	ग	–	रे	सा	सा	–	सा	–	ग	म	प	ध
ज	ग	प	र	जा	ऽ	नि	ठ	गा	ऽ	यौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ऩि	ऩि	ऩि	ऩि	सा	सा	सा	सा	सा	रे	ग	मग	रे	–	सा	सा
ध	न	म	द	कु	ल	म	द	त	रु	नी	ऽऽ	कैं	ऽ	म	द
ग	म	ग	म	प	प	ग	म	ध	–	–	ऩिध	प	–	–	–
भ	व	म	द	ह	रि	बि	स	रा	ऽ	ऽ	ऽऽ	यौ	ऽ	ऽ	ऽ
ग	ग	ग	म	प	प	ग	म	ध	–	प	–	ग	म	प	ध
भ	व	म	द	ह	रि	बि	स	रा	ऽ	यौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा

ग	म	ग	रे	ग	प	प,	प	–	ध	नि	–	प	ध	प	प
क	लि	म	ल	ह	र	न	का	ऽ	लि	मा	ऽ	टा	ऽ	र	न
प	ध	सां	रें	गं	–	मं	गं	रेंगं	मंगं	रें	सां	नि	–	ध	प
र	स	ना	ऽ	स्या	ऽ	म	न	गाऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	यौ	ऽ
म	ध	ध	ध	ध	–	ध	प	नि़	–	ध	म	प	ध	प	–
र	स	म	य	जा	ऽ	नि	सु	वा	ऽ	से	ऽ	म	र	कौं	ऽ
ग	–	म	प	–	धप	ग	म	ध	–	–	–	नि़	ध	प	–
चों	ऽ	च	घा	ऽ	लिऽ	प	छि	ता	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	यौ	ऽ

जग पर जानि…………।

रे मन, छाँड़ि बिषय……!

[राग माँड़—तीनताल]

(२५)

रे मन, छाँड़ि बिषय कौ रँचिबौ।
कत तूँ सुवा होत सेमर कौ, अंतहिं कपट न बचिबौ॥
अंतर गहत कनक-कामिनि कौं, हाथ रहैगौ पचिबौ।
तजि अभिमान, राम कहि बौरे, नतरुक ज्वाला तचिबौ॥
सतगुरु कह्यौ, कहौं तोसौं हौं, राम-रतन धन सँचिबौ।
सूरदास-प्रभु हरि-सुमिरन बिनु जोगी-कपि ज्यौं नचिबौ॥

भावार्थ—इस पद में महाकवि श्रीसूरदासजी सांसारिक विषयों में फँसे हुए मानवों को वास्तविक जागृति का संदेश देते हुए कहते हैं—अरे मन ! तू इन विषय-भोग के साजो-सामान को इकट्ठा करना छोड़दे। काश ! तू सेमल के फूल का अनुभव किया हुआ तोता होता, तब तू निश्चय ही समझ जाता कि अन्त में यह संसार भी उस सेमल के फूल के समान ही रसहीन है। तू जो इस समय स्वर्ण और सुन्दरी को अपनाए हुए है, तेरे अन्तिम समय पर इनमें से एक भी साथी नहीं होगा। तू जो इन नाशवान् वस्तुओं को पाकर गर्व करता है, यह गर्व मृत्यु के समय चूर-चूर हो जाएगा। इसलिए अरे पागल ! तू इस प्रकार के घमण्ड को छोड़कर भगवान् श्री रामचन्द्रजी का भजन कर। तू जितना भी हो सके, प्रभु के भजन-रूपी रत्न को इकट्ठा कर, यही अन्त में तेरे काम आएगा। यह पवित्र उपदेश श्रेष्ठ गुरुजी का किया हुआ है और अब मैं तुझसे कहता हूँ। भगवान् के भजन के बिना योगीराज भी नाचनेवाले बंदर के समान होते हैं। इसलिए यदि तू अपना कल्याण चाहता है, तो विषयादिक शत्रुओं को छोड़कर श्री राघवेन्द्र का गुणगान कर।

- **स्थायी**

२				०				३				×			
ग	-	रे	सा	-	ग	ग	म	प	ध	नि	सां	ध	ध	प	-
रे	ऽ	म	न	ऽ	छाँ	ड़ि	बि	ष	य	कौ	ऽ	रँ	चि	बौ	ऽ
०				३				×				२			
म	म	म	-	प	प	-	ग	-	प	धनि	सां	ध	प	ध	प
क	त	तूँ	ऽ	सु	वा	ऽ	हो	ऽ	त	सेऽ	ऽ	म	र	कौ	ऽ
प	सां	सां	प	प	ध	धप	म	म	प	प	ग	रे	ग	रे	सा
अं	ऽ	त	हिं	क	प	टऽ	न	ब	चि	बौ	ऽ	रे	ऽ	म	न

- **अन्तरा**

०				३				×				२			
रें	-	रें	रें	रें	रें	रें	सां	रें	गं	मं	गं	रें	रें	सां	-
अं	ऽ	त	र	ग	ह	त	क	न	क	का	ऽ	मि	नि	कौं	ऽ
नि	रें	सां	नि	ध	नि	ध	प	ध	रें	सां	-	-	-	-	-
हा	ऽ	थ	र	है	ऽ	गौ	ऽ	प	चि	बौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सां	सां	सां	सां	नि	ध	ध,	ध	नि	ध	प	मं	प	ध	प	-
त	जि	अ	भि	मा	ऽ	न	रा	ऽ	म	क	हि	बौ	ऽ	रे	ऽ
प	सां	सां	प	प	ध	धप	म	म	प	प	ग	रे	ग	रे	सा
न	त	रु	क	ज्वा	ऽ	लाऽ	ऽ	त	चि	बौ	ऽ	रे	ऽ	म	न

रे मन, गोबिंद के……!

[राग बागेश्री—तीनताल]

(२६)

रे मन, गोबिंद के ह्वै रहियै ।
इहिं संसार अपार बिरत ह्वै, जम की त्रास न सहियै ॥
दुख, सुख, कीरति, भाग आपनें आइ परै सो गहियै ।
सूरदास भगवंत-भजन करि अंत बार कछु लहियै ॥

भावार्थ—इस पद में भक्तराज सूरदासजी भगवत्-भजन को जीवन का सार बताते हुए कहते हैं—अरे मन ! तू सब प्रकार से श्री गोविन्द भगवान् का ही बनने का प्रयत्न कर और उन्हीं का होजा। इस संसार की माया अपार है, इसमें अधिक तल्लीन होकर तू यमराज का कोप-भाजन मत बन। जीवन में आनेवाले दुःख, सुख, यश आदि को भाग्य का लिखा समझकर प्रत्येक अवसर का सामना करता रह। किन्तु सब कार्यों के साथ-साथ प्रभु के भजन को प्रमुख मानकर करता रह; यही तेरी कमाई है, जो मृत्यु के समय तेरे साथ जाएगी।

स्थायी •

२				०				३				×			
म	ध	नि	सां	नि	ध	म	म	मध	पम	ग	रे	म	–	म	–
रे	ऽ	म	न	गो	ऽ	बिं	द	केऽ	ऽऽ	ह्वै	ऽ	र	हि	यै	ऽ
म	ध	नि	सां	रे	ग	म	ग	रे	–	सा	सा	म	म	म	ग
रे	ऽ	म	न	इ	हिं	सं	ऽ	सा	ऽ	र	अ	पा	ऽ	र	बि
म	नि	ध	–	ग	म	ध	नि	सां	–	ध	नि	सां	सां	सां	–
र	त	ह्वै	ऽ	ज	म	की	ऽ	आ	ऽ	स	न	स	हि	यै	ऽ

अन्तरा •

०				३				×				२			
म	म	ग	ग	म	–	ध	नि	सां	सां	सां	नि	–	ध	सां	–
दु	ख	सु	ख	की	ऽ	र	ति	भा	ऽ	ग	आ	ऽ	प	नैं	ऽ
ध	नि	सां	मं	गं	रें	सां	नि	सां	–	निसां	रें	नि	नि	ध	–
आ	ऽ	प	नैं	आ	ऽ	इ	प	रै	ऽ	सोऽ	ऽ	ग	हि	यै	ऽ
म	ध	ध	ध	–	ध	प	ध	पध	नि	ध	म	ग	ग	रे	सा
सू	ऽ	र	दा	ऽ	स	भ	ग	वंऽ	ऽ	त	भ	ज	न	क	रि
नि़	सा	ग	म	ध	म	ध	नि	सां	सां	सां	–	म	ध	नि	सां
अं	ऽ	त	बा	ऽ	र	क	छु	ल	हि	यै	ऽ	रे	ऽ	म	न

रे मन, अजहूँ क्यौं न……!

[राग भैरवी—तीनताल]

(२७)

रे मन, अजहूँ क्यौं न सम्हारै ।
माया-मद मैं भयौ मत्त, कत जनम बादिहीं हारै ।।
तू तौ बिषया-रंग रँग्यो है, बिन धोए क्यौं छूटै ।
लाख जतन करि देखौ, तैसैं बार-बार बिष घूँटै ।।
रस लै-लै औटाइ करत गुर, डारि देत है खोई ।
फिरि औटाए स्वाद जात है, गुर तैं खाँड़ न होई ।।
सेत, हरौ, रातौ अरु पियरौ रंग लेत है धोई ।
कारौ अपनौ रंग न छाँड़ै, अनरँग कबहुँ न होई ।।
कुबिजा भई स्याम-रँग-राती, तातैं सोभा पाई ।
ताहि सबै कंचन सम तौलैं अरु श्री-निकट समाई ।।
नंद-नँदन-पद-कमल छाँड़ि कै माया-हाथ बिकानौ ।
सूरदास आपुहिं समुझावै, लोग बुरौ जिनि मानौ ।।

भावार्थ—अरे मन ! तू अब भी प्रभु का स्मरण क्यों नहीं करता ? माया के घमण्ड में मस्त होकर क्यों जीवन को बर्बाद करता है ? तू विषय-वासनाओं के रंग में रँगा हुआ है । यह रंग बिना धोए हुए कदापि नहीं छूट सकता । तू जो बार-बार विषय की इच्छा करता है, ऐसा करने से तो इन विषय-वासनाओं का रंग अधिक पक्का होगा; ठीक उसी प्रकार, जैसे विष को बार-बार घोटने से उसमें अधिक विषैलापन आजाता है । तू इस विषय-रूपी रस को औटाकर गुड़ बना रहा है, किन्तु इसे इसी प्रकार पुनः-पुनः औटाने से खाँड़ नहीं बनेगी, बल्कि स्वाद मारा जाएगा । तेरे ऊपर यदि कभी श्वेत, हरा, पीला और लाल रंग पड़ जाता है, तो उसे तुरन्त धो लेता है; किन्तु अपने हृदय के काले रंग को नहीं धोता । जबतक तू इस कालिमा को नहीं धो लेगा, तबतक तुझे भगवान् की भक्ति प्राप्त नहीं हो सकती, क्योंकि काले पर दूसरा रंग नहीं चढ़ा करता है । कुब्जा नाम की स्त्री श्यामसुन्दर के भक्ति-रूपी रंग में रँगी थी । उसकी कितनी ख्याति हुई ? यहाँ तक कि दुनिया उसे सोने के समान मानती है । वह भगवान् के अङ्ग में समा गई, जिनके निकट सदैव श्रीलक्ष्मीजी विराजती हैं ।

श्रीसूरदासजी कहते हैं कि मेरी बातों का कोई बुरा मत मानना । मैं तो स्वयं अपने मन को समझाता रहता हूँ, क्योंकि मेरा मन नन्ददुलारे श्रीकृष्ण के चरण-कमलों को छोड़कर संसार के माया-जाल में फँसा हुआ है ।

• **स्थायी**

२				०				३				×			
गुप	मग	सा	सा	सा	सां	सां	–	धु	निधु	प	म	म	–	म	–
रेऽ	ऽऽ	म	न	अ	ज	हूँ	ऽ	क्यौं	ऽऽ	न	स	म्हा	ऽ	रै	ऽ

गप	मग	सा	सा	सा	ग	ग	–	म	म	म	–	प	प	–,	ग
रेऽ	ऽऽ	म	न	मा	ऽ	या	ऽ	म	द	मैं	ऽ	भ	यो	ऽ	म
–	प	म	म	ग	ग	ग	म	–	म	गप	मग	सा	–	सा	–
ऽ	त्त	क	त	ज	न	म	बा	ऽ	दि	हींऽ	ऽऽ	हा	ऽ	रैं	ऽ
ग	म	ध	नि												
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	अजहूँ...........।											

अन्तरा •

०				३				×				२			
सां	–	ध	नि	सां	सां	सां	–	ध	नि	ध	म	म	–	म	–
तू	ऽ	तौ	ऽ	बि	ष	या	ऽ	रं	ऽ	ग	रँ	ग्यौ	ऽ	है	ऽ
प	प	प	–	पध	निध	प	म	म	–	म	–	मप	मग	मप	–
बि	न	धो	ऽ	एऽ	ऽऽ	क्यौं	ऽ	छू	ऽ	टै	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ
नि	–	नि	नि	नि	रें	सां	सां	प	ध	म	–	प	ध	सां	–
ला	ऽ	ख	ज	त	न	क	रि	दे	ऽ	खौ	ऽ	तैं	ऽ	सैं	ऽ
ध	–	ध	ध	–	ध	प	ध	म	–	म	–	गप	मग	सा	सा
बा	ऽ	र	बा	ऽ	र	बि	ष	घूँ	ऽ	टै	ऽ	रे	ऽ	म	न

नर तैं जनम पाइ कह......!

[तीनताल]

(२८)

नर तैं जनम पाइ कह कीनौ ?
उदर भर्‌यौ कूकर-सूकर लौं, प्रभु कौ नाम न लीनौ ॥
श्री भागवत सुनी नहिं स्रवननि, गुरु गोबिंद नहिं चीनौ ।
भाव-भक्ति कछु हृदय न उपजी, मन बिषया मैं दीनौ ॥
झूठौ सुख अपनौ करि जान्यौ, परस प्रिया कैं भीनौ ।
अघ कौ मेरु बढ़ाइ अधम तू, अंत भयौ बलहीनौ ॥
लख चौरासी जोनि भरमि कै फिरि वाहीं मन दीनौ ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु ज्यौं अञ्जलि-जल छीनौ ॥

भावार्थ—अरे मनुष्य ! तूने इस संसार में जन्म लेकर क्या किया ? केवल यही कि कुत्ते व सूअर के समान अपना पेट भर लिया, लेकिन ईश्वर के चार नाम लेने की फुरसत तुझे नहीं मिली । तूने न तो कभी श्री भागवत (सनातन धर्म का महान् ग्रन्थ) को ही सुना और न उसके सुनने के लिए किसी गुरु को पहचानने की कोशिश की, जिसके उपदेश द्वारा तेरे हृदय में भक्ति-भाव की जागृति होती । इन सब बातों के विपरीत तेरा मन विषय आदि में डूबा रहा । तुझे अपनी प्रिया (स्त्री) का स्पर्श बड़ा ही सुन्दर मालूम हुआ और इस झूठे सुख को अपना सच्चा सुख समझने लगा । इसका नतीजा यह हुआ कि आखिरी समय तू बिलकुल बलहीन होगया और विषयादिक पापों का पहाड़ तेरे ऊपर खड़ा होगया । तू जीव की चौरासी लाख योनियों को जानते हुए भी मोह के चक्कर में पड़कर पुनः उन्हीं में आसक्त होगया । श्री सूरदासजी कहते हैं कि अरे मनुष्य ! सच तो यह है कि भगवान् के भजन के बिना तेरा जीवन ठीक उसी प्रकार समाप्त होगया, जिस प्रकार अञ्जलि से जल समाप्त हो जाता है ।

• स्थायी

२				०				३				×			
सा	सा	ध	–	प	ध	प	म	ग	रे	रे	सा	साग	रेग	सा	–
न	र	तैं	ऽ	ज	न	म	पा	ऽ	इ	क	हु	कोऽ	ऽऽ	नौ	ऽ
सा	सा	ध़	–	ध़	ध़	सा	सा	सा	–	सा	–	रे	ग	म	ग
न	र	तैं	ऽ	उ	द	र	भ	रचौ	ऽ	कू	ऽ	क	र	सू	ऽ
रे	रे	सा	–	सा	ध	ध	–	पध	ऩिध	प	म	गम	गरे	सारे	–
क	र	लौं	ऽ	प्र	भु	कौ	ऽ	नाऽ	ऽऽ	म	न	लीऽ	ऽऽ	नौऽ	ऽ
सा	सा	ध	–												
न	र	तैं	ऽ	इत्यादि ।											

• अन्तरा

प	–	प	–	ध	प	म	ग	रे	–	सा	सा	रे	रे	सा	सा
श्री	ऽ	भा	ऽ	ग	व	त	सु	नी	ऽ	न	हिं	स्र	व	न	नि
ध़	सा	सा	–	रे	ग	म	ग	रे	–	रे	–	ग	प	धनि	सां
गु	रु	गो	ऽ	बिं	द	न	हिं	ची	ऽ	नौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ
सां	–	सां,	ऩि	–	ऩि	ध	प	प	ऩि	ध	प	म	ग	रे़	–
भा	ऽ	व	भ	ऽ	क्ति	क	छु	हृ	द	य	न	उ	प	जी	ऽ
रे	ग	प	ध	सां	ऩि	ध	प	ग	प	प	–	ग	रे	सा	–
म	न	बि	ष	या	ऽ	मैं	ऽ	दी	ऽ	नौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

रह्यो मन सुमिरन कौ......!

[राग कालिंगड़ा—तीनताल]

(२६)

रह्यो मन सुमरिन कौ पछितायौ ।
यह तन राँचि-राँचि करि बिरच्यौ, कियौ आपनौ भायौ ॥
मन-कृत दोष अथाह तरंगिनि तरि नहिं सक्यौ, समायौ ।
मेल्यौ जाल काल जब खैंच्यौ, भयौ, मीन जल-हायौ ॥
कीर पढ़ावत गनिका तारी, ब्याध परम पद पायौ ।
ऐसौ सूर नाहिं कोउ दूजौ, दूरि करै जम-दायौ ॥

भावार्थ—यह ध्रुव सत्य है कि जब मनुष्य के लिए संसार छोड़ने का आह्वान आजाया करता है, तब वह अपने जीवन की डायरी पर सरसरी नजर डालता है और उसमें भगवान् का भजन न पाकर बार-बार पश्चात्ताप करता है कि मैंने और तो दुनिया-भर के कर्म-कुकर्म सब किए, किन्तु यमराज के दण्ड से छुड़ानेवाला असली कर्म—भगवत्-भजन नहीं किया। इस नाशवान् शरीर को खूब रच-पचकर सजाया और सदैव मनमानी करता रहा। मन के द्वारा किए हुए पापों की अथाह तरंगों में पड़कर डूब गया; बहुतेरे हाथ-पाँव फेंके, किन्तु इस संसार-सागर से तैरकर निकल ही नहीं सका। अन्त में जब काल-रूपी जाल ने खींचकर निकाला, तो ठीक उसी प्रकार तड़पने लगा, जिस प्रकार जल के अभाव में मछली तड़पने लगती है। भक्तशिरोमणि श्रीसूरदासजी कहते हैं कि तूने यह जानते हुए भी कि तोते को राम-नाम पढ़ाने के कारण गणिका नाम की वेश्या तथा व्याध-जैसे दुष्ट को प्रभु ने इस भवसागर से तार दिया, भगवत्-भजन नहीं किया। अब तू यह अच्छी तरह समझले कि भगवान् के अतिरिक्त कोई भी ऐसा नहीं है, जोकि यमराज की सजा से तुझे बचा सके।

स्थायी •

२				०				३				×			
प	ध॒	प	ध॒	म	प	म	ग	म	–	प	ध॒	सां	–	नि	ध॒
र	ह्यो	म	न	सु	मि	र	न	कौ	ऽ	प	छि	ता	ऽ	यौ	ऽ
प	ध॒	प	ध॒	ग	म	प	म	रे॒	–	सा	म	–	म	प	प
र	ह्यो	म	न	य	ह	त	न	राँ	ऽ	चि	राँ	ऽ	चि	क	रि
म	ध॒	प	–	प	प	ध॒	नि	–	नि	सां	रें॒	नि	सां	सां	–
बि	र	च्यौ	ऽ	कि	यौ	ऽ	आ	ऽ	प	नौ	ऽ	भा	ऽ	यौ	ऽ

नि	ध॒	प	प								
र	ह्यो	म	न								

● अन्तरा

०				३				×				२			
प	ध॒	प	ध॒	नि	–	सां	सां	सां	रें॒	सां	रें॒	नि	सां	सां	सां
म	न	कृ	त	दो	ऽ	ष	अ	था	ऽ	ह	त	रं	ऽ	गि	नि
प	ध॒	सां	सां	नि	ध॒	प	ध॒	म	प	प	–	म	ग	रे॒	सा
त	रि	न	हिं	स	क्यौ	ऽ	स	मा	ऽ	यौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सा	म	म	ग	म	प	प,	म	ध॒	ध॒	ध॒	ध॒	नि	ध॒	प	–
मे	ऽ	ल्यौ	ऽ	जा	ऽ	ल	का	ऽ	ल	ज	ब	खैं	ऽ	च्यौ	ऽ
प	प	ध॒	नि	–	नि	सां	रें॒	नि	सां	सां	–	नि	ध॒	प	–
भ	यौ	ऽ	मी	ऽ	न	ज	ल	हा	ऽ	यौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

सुमिरन…………इत्यादि।

सब तजि भजिऐ……!

[राग गारा—तीनताल : मध्यम को सा मानकर]

(३०)

सब तजि भजिऐ नंद-कुमार।
और भजे तैं काम सरै नहिं, मिटै न भव-जंजार॥
जिहिं-जिहिं जोनि जन्म धारयौ, बहु जोरयौ अघ कौ भार।
तिहिं काटन कौं समरथ हरि कौ तीछन नाम-कुठार॥
बेद, पुरान, भागवत, गीता, सबकौ यह मत सार।
भव-समुद्र हरि-पद-नौका बिनु कोउ न उतरै पार॥
यह जिय जानि, इहीं छिन भजि, दिन बीते जात असार।
सूर पाइ यह समौ लाहु लहि, दुर्लभ फिरि संसार॥

भावार्थ—इस पद में श्री सूरदासजी केवल भगवत्-भजन को मानव-जीवन का सार बताते हुए कहते हैं—अरे मनुष्य ! तू संसार के सब झूठे झगड़ों को छोड़कर केवल भगवान् का भजन कर, और झगड़ों में लगे रहने से तेरा भला नहीं हो सकता, यानी तू इस भव-सागर से पार नहीं हो सकता। तू इस मनुष्य-योनि में, अनेक योनियों में जन्म धरने के बाद आया है। उन सभी योनियों में तूने अपने सिर पर पापों का बोझ बाँध लिया है। उस पापों के पहाड़ को भगवान् के नाम का पैना कुठार ही काट सकता है। गीता, भागवत, वेद और पुराण—सबका यही मत और सार है कि बिना श्रीप्रभु की चरण-रूपी नैया में बैठे, यह संसार-रूपी समुद्र कदापि पार नहीं किया जा सकता। अतः इन बातों पर हार्दिक विश्वास करके इसी क्षण से भगवान् का भजन प्रारम्भ करदे, क्योंकि प्रभु के भजन बिना जितने दिन व्यतीत होते हैं, वे सब तत्त्वहीन हैं। तुझको मनुष्य-शरीर मिला है; यह फिर सरलता से नहीं मिल सकता, अतः यही एक ऐसा अवसर है, जिसमें प्रभु की आराधना कर सकता है।

स्थायी •

२				०				३				×			
सा	ग	म	प	ग॒	रे	सा	–	ग॒	रेसा	ध़	नि॒	सा	–	–	सा
स	ब	त	जि	भ	जि	ऐ	ऽ	नं	ऽऽ	द	कु	मा	ऽ	ऽ	र
सा	ग	म	प	म़	–	ध़	नि॒	सा	–	सा	–	सा	ग	म	प
स	ब	त	जि	औ	ऽ	र	भ	जे	ऽ	तैं	ऽ	का	ऽ	म	स
ग॒	रे	सा	सा	सा	ग	–	ग	ग	म	प	ध	ग	म	ग	म
रै	ऽ	न	हिं	मि	टै	ऽ	न	भ	व	जं	ऽ	जा	ऽ	ऽ	र

अन्तरा •

०				३				×				२			
प	प	ग	म	प	–	प	रे	–	म	पध	मप	ग॒	–	सा	सा
जि	हिं	जि	हिं	जो	ऽ	नि	ज	ऽ	न्म	धाऽ	ऽऽ	रयौ	ऽ	ब	हु
ग	–	ग	–	सा	ग	म	प	म	–	ग	म	ग॒	रे	म	–
जो	ऽ	रयौ	ऽ	अ	घ	कौ	ऽ	भा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	र
ध	ध	ध	–	ध	नि॒	ध	–	म	म	ध	प	ग	म	ग॒	रे
ति	हिं	का	ऽ	ट	न	कौं	ऽ	स	म	र	थ	ह	रि	कौ	ऽ
सा	ग	ग	ग	ग	म	प	ध	म	–	ग	म	सा	ग	म	प
ती	ऽ	छ	न	ना	ऽ	म	कु	ठा	ऽ	ऽ	र	स	ब	त	जि

रे मन, आपु कौं······!

[राग भैरवी—ताल रूपक]

(३१)

रे मन, आपु कौं पहिचानि ।
सब जनम तें भ्रमत खोयौ, अजहुँ तौ कछु जानि ॥
ज्यौं मृगा कस्तूरि भूलै, सु तौ ताकें पास ।
भ्रमत हीं वह दौरि ढूँढ़ै, जबहिं पावै बास ॥
भरम ही बलवंत सब मैं, ईसहू कें भाइ ।
जब भगत भगवंत चीन्है, भरम मन तें जाइ ॥
सलिल कौं सब रंग तजि कै, एक रंग मिलाइ ।
सूर जो द्वै रंग त्यागे, यहै भक्त सुभाइ ॥

भावार्थ—अरे मन ! तूने मोह-माया की गलियों में भटकते-भटकते सारा जीवन व्यर्थ ही खो दिया, किन्तु अब तो तू अपनी असलियत को पहचानने का प्रयत्न कर। जिस प्रकार कस्तूरीवाला हिरन, नशे की हालत में पागल बना घूमता है और अपने पास होते हुए भी कस्तूरी की गंध आने पर ढूँढ़ने लग जाता है, उसी प्रकार तू भी माया के नशे में असलियत को भूला हुआ है और उसे ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है; यद्यपि वह तेरे पास ही मौजूद है। तू यह नहीं जानता कि यह माया बड़ी विचित्र है। मनुष्य बेचारे की क्या बिसात ? इसमें भगवान् शंकर तक मोह जाते हैं; परन्तु जब भक्त भगवान् को पहचान लेता है, तब यह माया भी उससे दूर रहने लगती है। भक्तराज सूरदासजी कहते हैं कि अरे मनुष्य ! यदि तू भगवान् का भक्त बनना चाहता है, तो अपने हृदय के जल से, सब प्रकार के रंगों को निकालकर केवल एक भगवान् की भक्ति का रंग घोलले। क्योंकि भक्तों के हृदय में कभी दो रंग नहीं रहते, उनके हृदय में केवल ईश्वर की भक्ति का एक ही रंग रहता है।

• स्थायी

२		३		०			२		३		०		
सां	नि	रें	सां	ध	नि	ध	प	ध	नि	नि	सां	-	सां
रे	ऽ	म	न	आ	ऽ	पु	कौं	ऽ	प	हि	चा	ऽ	नि
सां	नि	रें	सां	रें	रें	रें	रें	रें	गं	-	सां	गं	रें
रे	ऽ	म	न	स	ब	ज	न	म	तैं	ऽ	भ्र	म	त
सां	-	सां	-	सां	गं	सां	ध	-	नि	नि	सां	-	सां
खो	ऽ	यौ	ऽ	अ	ज	हुँ	तौ	ऽ	क	छु	जा	ऽ	नि

अन्तरा •

सां	-	सां	-	प	म	प	ग॒	-	म	म	प	-	प		
खो	ऽ	यौ	ऽ	ज्यौं	ऽ	मृ	गा	ऽ	क	ऽ	स्तू	ऽ	रि		
प	-	प	-	नि॒	-	नि॒	ध	नि॒	प	ध	पध॒	नि॒	नि॒		
भू	ऽ	लै	ऽ	सु	ऽ	तौ	ता	ऽ	कें	ऽ	पाऽ	ऽ	ऽ		
ध	नि॒	प	प	सां	सां	सां	सां	-	सां	सां	नि॒सां	रें	सां		
ऽ	ऽ	ऽ	स	भ्र	म	त	हीं	ऽ	व	ह	दौऽ	ऽ	रि		
ध॒	-	प	-	सां	सां	ध॒	नि॒	ध॒	प	ध॒	सां	-	सां		
ढूं	ऽ	ढ़ै	ऽ	ज	ब	हिं	पा	ऽ	वै	ऽ	बा	ऽ	स		

राम न सुमिर्‌यौ एक······!

[राग रामकली—ताल धुमाली]

(३२)

राम न सुमिर्‌यौ एक घरी।
परम भाग सुक्रित के फल तैं, सुंदर देह धरी॥
जिहिं-जिहिं जोनि भ्रम्यौ संकट-बस, सोइ-सोइ दुखनि भरी।
काम-क्रोध-मद-लोभ-गरब मैं, बिसर्‌यौ स्याम हरी॥
भैया-बंधु-कुटुंब घनेरे, तिनतैं कछु न सरी।
लै देही घर-बाहर जारी, सिर ठोंकी लकरी॥
मरती बेर सम्हारन लागे, जो कछु गाड़ि धरी।
सूरदास तैं कछू सरी नहिं, परी काल-फँसरी॥

भावार्थ—मरते समय मनुष्य को केवल यही पछतावा रह जाता है कि मैंने घड़ी-भर श्रीराम का भजन नहीं किया। यद्यपि बड़े भाग और शुभ कर्मों के फलस्वरूप मुझे मनुष्य का सुन्दर शरीर प्राप्त हुआ था। मैं जिस-जिस योनि में पहुँचा, उसीमें संकटों का सामना करना पड़ा। काम, क्रोध, लोभ और मोह के घमण्ड में चूर रहा, किन्तु श्रीहरि का भजन नहीं कर सका। मेरा सारा परिवार था, भाई थे, मित्र थे और बहुत-से कुटुम्बी भी थे; किन्तु अंत समय पर किसी से काम नहीं निकल सका। वे सब लोग मेरे शरीर को घर के बाहर ले गए और मेरे सर को लकड़ी से फोड़-फोड़कर जला दिया। जिस समय मेरे प्राण निकल रहे थे, उस समय मेरे सगे-सम्बन्धी, मेरे कमाए हुए गड़े द्रव्य की तलाश तो करने लगे, किन्तु मृत्यु की फाँसी को कोई भी न छुड़ा सका। सूरदासजी कहते हैं कि यदि मैंने भजन किया होता, तो वह मेरे साथ चलता।

• **स्थायी**

×				०				×				०			
प	ध	सां	सां	नि	ध	प	–	म	प	ग	म	प	ध	प	मं
रा	ऽ	म	न	सु	मि	रचौ	ऽ	ए	ऽ	क	घ	री	ऽ	ऽ	ऽ
म	म	म	म	–	रे	ग	प	म	ग	म	म	रे	रे	सा	–
प	र	म	भा	ऽ	ग	सु	ऽ	क्रि	त	के	ऽ	फ	ल	तैं	ऽ
सा	–	ग	म	प	–	ध	मं	प	–	–	–	पनि	धप	मग	म
सु	ऽ	द	र	दे	ऽ	ह	ध	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ

• **अन्तरा**

म	म	म	म	प	–	ध	ध	नि	–	सां	–	सां	सां	रें	सां
जि	हिं	जि	हिं	जो	ऽ	नि	अ	म्यौ	ऽ	सं	ऽ	क	ट	ब	स
नि	सां	गं	मं	गं	रें	सां	ध	सां	–	–	–	नि	ध	प	–
सो	इ	सो	इ	दु	ख	नि	भ	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
मं	–	मं	प	ध	नि	ध	प	म	–	म	म	रे	रे	सा	–
का	ऽ	म	क्रो	ऽ	ध	म	द	लो	ऽ	भ	ग	र	ब	मैं	ऽ
सा	सा	ग	म	प	–	ध	मं	प	–	–	–	ध	मं	प	–
बि	स	रचौ	ऽ	स्या	ऽ	म	ह	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

जौ हरि-व्रत निज......!

[राग तिलंग—तीनताल]

(३३)

जौ हरि-व्रत निज उर न धरैगौ।
तौ को अस त्राता जु अपुन करि, कर कुठावँ पकरैगौ॥
आन देव की भक्ति-भाइ करि, कोटिक कसब करैगौ।
सब वे दिवस चारि मन-रंजन, अंतकाल बिगरैगौ॥
चौरासी लख जोनि जन्मि जग, जल-थल भ्रमत फिरैगौ।
सूर सुकृत सेवक सोइ साँचौ, जौ स्यामहिं सुमिरैगौ॥

भावार्थ—अरे मनुष्य-रूपी जीव ! यदि तू श्रीहरि भगवान् का व्रत अपने हृदय में धारण नहीं करेगा, तो संकटों को हरनेवाला ऐसा कौन है, जो तुझे अपना बनाकर बुरे स्थान से निकाल सकता है। तू यदि अन्य देवी-देवताओं की शरण लेगा, तो करोड़ों प्रकार के व्यवसाय करने पड़ेंगे। फिर भी इससे कोई ठोस लाभ नहीं हो सकता। हाँ, चार दिन का मनोरंजन अवश्य हो जाएगा, किन्तु तेरा अन्त समय तो बिगड़ ही जाएगा। तुझे मुक्ति नहीं मिल सकती; तुझे पुनः इन्हीं चौरासी लाख योनियों में आना होगा, जिनके कारण पृथ्वी, आकाश और जल में भटक-भटककर अनेक यातनाएँ सहनी पड़ेंगी। सूरदासजी कहते हैं कि संसार की इस कर्म-भूमि में, मनुष्य का यदि कोई सच्चा और काम आनेवाला कर्म है, तो वह परमात्मा श्रीश्यामसुन्दर का भजन है; जिसके फलस्वरूप उसकी मुक्ति हो जाएगी और वह बार-बार के जन्म-मरण के दुःखों से मुक्त हो जाएगा।

स्थायी •

०				३				×				२			
ग	म	प	नि	सां	ऩिप	म	ग	सा	सा	ग	ग	म	–	म	–
जो	ऽ	ह	रि	ब्र	तऽ	नि	ज	उ	र	न	ध	रै	ऽ	गो	ऽ
प	–	प	–	प	प	प	–	मप	ऩि	प	म	प	म	ग	म
तौ	ऽ	को	ऽ	अ	स	आ	ऽ	ताऽ	ऽ	जु	अ	पु	न	क	रि
ऩि	ऩि	ऩि	ऩि	–	ऩि	प	ऩि	पऩि	सांऩि	प	–	गम	पम	ग	–
क	र	कु	ठा	ऽ	वँ	प	क	रैऽ	ऽऽ	गो	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ

अन्तरा •

ग	म	प	नि	सां	नि	सां	सां	प	नि	सां	रें	सांनि	सां	ऩि	प
आ	ऽ	न	दे	ऽ	व	की	ऽ	भ	ऽ	क्ति	भा	ऽऽ	इ	क	रि
सां	–	ऩि	प	म	प	ग	म	प	–	प	–	म	–	प	–
को	ऽ	टि	क	क	स	ब	क	रै	ऽ	गो	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
गं	गं	गं	–	सां	सां	सां	ऩि	–	ऩि	प	ऩि	सां	–	सां	सां
स	ब	वे	ऽ	दि	व	स	चा	ऽ	रि	म	न	रं	ऽ	ज	न
ऩि	–	ऩि	ऩि	–	ऩि	प	ऩि	सांरें	सांऩि	प	–	गम	पम	ग	–
अं	ऽ	त	का	ऽ	ल	बि	ग	रैऽ	ऽऽ;	गो	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ

अंत के दिन कौं हैं......!

[तीनताल]

(३४)

अंत के दिन कौं हैं घनस्याम ।
माता-पिता-बंधु-सुत तौ लगि, जौ लगि जिहिं कौं काम ।।
आमिष-रुधिर-अस्थि अंग जौलौं, तौलौं कोमल चाम ।
तौ लगि यह संसार सगौ है, जौ लगि लेहि न नाम ।।
इतनी जउ जानत मन मूरख, मानत याहीं धाम ।
छाँड़ि न करत सूर सब भव-डर बृन्दाबन सौं ठाम ।।

भावार्थ—मृत्यु के समय मनुष्य का भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई साथी नहीं हुआ करता । माँ, बाप, भाई और बेटे सब-के-सब मतलब के सगे होते हैं । शरीर में जबतक माँस, रक्त और हड्डियाँ रहती हैं, तभीतक यह चमड़ा भी कोमल रहता है । सारांश यही है कि जबतक मनुष्य का शरीर चलता-फिरता और काम के योग्य रहता है, तभीतक दुनियावाले उसके साथी होते हैं, अन्यथा कोई नाम भी नहीं लेता । सूरदासजी कहते हैं कि अरे मूर्ख ! तू इन सब बातों को जानते हुए भी इस नाशवान् संसार को अपना घर समझ रहा है । अब भी इन सब बन्धनों को काटने के लिए वृन्दावन में वास करके भगवत्-भजन नहीं करता ?

• **स्थायी**

२				०				३				×			
ध़	नि॒	सा	रे	ग	प	म	–	रे	सा	नि॒	ध़	सा	–	–	–
अं	ऽ	त	के	दि	न	कौं	ऽ	हैं	ऽ	घ	न	स्या	ऽ	म	ऽ
०				३				×				२			
नि॒	–	नि॒	–	सा	सा	–	ग	–	प	म	म	रे	–	सा	सा
मा	ऽ	ता	ऽ	पि	ता	ऽ	बं	ऽ	धु	सु	त	तौ	ऽ	ल	गि
ग	–	ग	ग	ग	म	प	ध	म	–	–	–	रे	सा	नि॒	ध़
जौ	ऽ	ल	गि	जि	हिं	कौं	ऽ	का	ऽ	ऽ	म	हैं	ऽ	घ	न
सा	ग॒	–	ग॒	रे	सा	नि॒	ध़	सा	–	–	सा	ध़	नि॒	सा	रे
स्या	ऽ	ऽ	म	हैं	ऽ	घ	न	स्या	ऽ	ऽ	म	अं	ऽ	त	के

अन्तरा •

०				३				×				२			
ध़	सा	सा	सा	रे	म	म	म	प	प	ध	ऩि	ध	प	प	–
आ	ऽ	मि	ष	रु	धि	र	अ	ऽ	स्थि	अँ	ग	जौ	ऽ	लौं	ऽ
ऩि	ध	नि	प	ध	म	प	ग	म	–	ग	म	प	ध	ऩि	–
तौ	ऽ	लौं	ऽ	को	ऽ	म	ल	चा	ऽ	ऽ	म	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
पध	ऩि	ऩि	ध	ऩि	सां	सां	रें	ऩि	–	ध	प	ग	प	म	–
तौऽ	ऽ	ल	गि	य	हृ	सं	ऽ	सा	ऽ	र	स	गौ	ऽ	है	ऽ
ग	–	ग	ग	ग	म	प	ध	म	–	–	म	रे	सा	ध़	ऩि़
जौ	ऽ	ल	गि	ले	ऽ	हि	न	ना	ऽ	ऽ	म	हैं	ऽ	घ	न
सा	म ग	–	ग	रे	सा	ऩि़	ध़	सा	–	–	सा	ध़	ऩि़	सा	रे
स्या	ऽ	ऽ	म	हैं	ऽ	घ	न	स्या	ऽ	ऽ	म	अं	ऽ	त	के

जनम तौ ऐसेहिं बीति......!

[तीनताल : मध्यम को सा मानकर]

(३५)

जनम तौ ऐसेहिं बीति गयौ।
जैसें रंक पदारथ पाए, लोभ बिसाहि लयौ॥
बहुतक जन्म पुरीष-परायन, सूकर-स्वान भयौ।
अब मेरी-मेरी करि बौरे, बहुरौ बीज बयौ॥
नर कौ नाम पारगामी हो, सो तोहिं स्याम दयौ।
तैं जड़ नारिकेल कपि-कर ज्यौं, पायौ नाहिं पयौ॥
रजनी गत बासर मृगतृष्ना रस हरि कौ न चयौ।
सूर नंद-नंदन जेहिं बिसरयौ, आपुहिं आपु हयौ॥

भावार्थ—अरे जीव ! मनुष्य का श्रेष्ठ चोला पाकर भी तेरा जन्म बेकार समाप्त होगया। जिस प्रकार किसी भिखारी को ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जाती है और वह मोह के वशीभूत हो जाता है, उसी प्रकार तू भी माया के चक्र में घूम गया। शायद तू नहीं जानता कि मनुष्य-शरीर से पहले तू कुत्ता और सूअर आदि की अपवित्र योनियों में रहकर मल आदि के गन्दे

वातावरण में पड़ा हुआ था। किन्तु अब इस मनुष्य के दुर्लभ शरीर को पाकर भी तेरी आँखें नहीं खुल सकीं। तू फिर भी यहाँ मोह के वशीभूत होकर पुनः उन्हीं पूर्व की योनियों में जाने की तैयारी कर रहा है। भगवान् श्री श्यामसुन्दर की कृपा से तुझे जीवों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य का शरीर मिला है। इस चोले में जीव अपने सुकर्मों के बल से इस भव-सागर से पार हो सकते हैं। किन्तु तू इसको भी ठीक उसी प्रकार खो रहा है, जिस प्रकार बन्दर नारियल के फल को पाकर उसका दूध पीने में असमर्थ रहता है। भक्तराज श्रीसूरदासजी कहते हैं कि तू दिन-रात मृगतृष्णा में खोया हुआ श्रीहरि के नाम का रसपान नहीं कररहा, इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि तू श्रीभगवान् का गुणगान न करके स्वयं अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार रहा है।

- **स्थायी**

२				०				३				×			
															नि़
															ज
सारे	सानि़	प़	-	रे	-	रे	सा	रेम	रे	नि़	नि़	सा	-	-	नि़
नऽ	मऽ	तौ	ऽ	ऐ	ऽ	से	हिं	बीऽ	ऽ	ति	ग	यौ	ऽ	ऽ	ज
सारे	सानि़	प़	-	प़	नि़	नि़	प़	नि़	सा	सा	नि़	सा	रे	रे	रेसा
नऽ	मऽ	तौ	ऽ	जै	ऽ	सैं	ऽ	रं	ऽ	क	प	दा	ऽ	र	थऽ
नि़	सा	सा	-	(म)रे	म	म	म	म	प	नि॒	प	म	प	-	-
पा	ऽ	ए	ऽ	लो	ऽ	भ	बि	सा	ऽ	हि	ल	यौ	ऽ	ऽ	ऽ
म	रे	सा	-												
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऐसेहिं..........।											

- **अन्तरा**

०				३				×				२			
प	प	प	प	म	ध	प	पम	रे	-	रेसा	नि़	सा	-	सा	-
ब	हु	त	क	ज	ऽ	न्म	पुऽ	री	ऽ	षऽ	प	रा	ऽ	य	न
ग॒	-	ग॒	ग॒	सा	रे	नि़	नि़	सारे	ग॒	रेग॒	म	ग॒म	प	मध	प
सू	ऽ	क	र	स्वा	ऽ	न	म	यौऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ
ध	नि॒	नि॒	ध	प	ध	ध	प	म	प	प	म	रेम	रेसा	सा	-
अ	ब	मे	ऽ	री	ऽ	मे	ऽ	री	ऽ	क	रि	बौऽ	ऽऽ	रे	ऽ
रे	म	म	-	म	प	नि	म	प	-	-	-	म	रे	सा	-
ब	हु	रौ	ऽ	बी	ऽ	ज	ब	यौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

प्रीतम जानि लेहु मन......!

[राग पीलू—तीनताल]

(३६)

प्रीतम जानि लेहु मन माहीं।
अपनें सुख कौं सब जग बाँध्यौ, कोउ काहू कौ नाहीं ॥
सुख मैं आइ सबै मिलि बैठत, रहत चहूँ दिसि घेरे।
बिपति परी तब सब सँग छाँड़े, कोउ न आवै नेरे ॥
घर की नारि बहुत हित जासौं, रहति सदा सँग लागी।
जा छन हंस तजी यह काया, प्रेत-प्रेत कहि भागी ॥
या बिधि कौ ब्यौहार बन्यौ जग, तासौं नेह लगायौ।
सूरदास भगवन्त-भजन बिनु, नाहक जनम गँवायौ ॥

भावार्थ—इस पद में महान् भक्त सूरदास अपने प्राणप्यारे श्री श्यामसुन्दर को संबोधित करते हुए संसार के झूठे मोह का वर्णन करते हैं और कहते हैं :—

हे प्रभु ! आप अपने हृदय में सोच लीजिए कि इस संसार में मेरा कोई भी नहीं है, सारा संसार मतलब का साथी है। यदि मैं सुखी हूँ तो सब लोग मुझे आठों पहर घेरे रहते हैं, किन्तु जब किसी मुसीबत में पड़ जाता हूँ, तो कोई भी पास नहीं आता, बल्कि सब दूर भागते हैं। यहाँ तक कि अपनी स्त्री, जिससे अत्यन्त प्रेम रहा है और जो सदैव साथ-साथ रहती आई है, वह भी प्राणों का पंछी उड़ने के समय शरीर को भूत-भूत कहकर डर जाती है और भाग खड़ी होती है। सब जानते हैं और मैं भी जानता हूँ कि स्वार्थी दुनिया का व्यवहार केवल मतलब से भरा हुआ है, किन्तु फिर भी, हे श्यामसुन्दर ! आपका भजन नहीं करता और व्यर्थ ही जीवन को खो रहा हूँ।

स्थायी

२				०				३				×			
												सा			
ग	प	म	ग	म	नि	प	ग	रे	नि	सा	ग	रे	सा	सा	–
प्री	ऽ	त	म	ऽ	जा	नि	ले	ऽ	हु	म	न	मा	ऽ	हीं	ऽ
नि	–	सा	रे	म	नि	प	ग	रे	नि	सा	ग	रे	सा	सा	–
प्री	ऽ	त	म	ऽ	जा	नि	ले	ऽ	हु	म	न	मा	ऽ	हीं	ऽ
नि	–	सा	रे	ग	रे	ग	सा	रे	नि	सा	–	प	ध	प	ध
प्री	ऽ	त	म	अ	प	नें	ऽ	सु	ख	कौं	ऽ	स	ब	ज	ग

नि़	–	सा	सा	ग॒	ग॒	ग॒	सा	ग	म	नि॒	प	ग॒	–	ग॒	–
बाँ	ऽ	ध्यौ	ऽ	को	उ	का	ऽ	हू	ऽ	कौ	ऽ	ना	ऽ	हीं	ऽ
रेम	ग॒रे	सा	रे												
प्रीऽ	ऽऽ	त	म	जानि लेहु.......।											

● अन्तरा

०				३				×				२			
प	प	ग॒	म	प	–	प	प	रेम	रेम	नि॒	प	ग॒	–	सा	सा
सु	ख	मैं	ऽ	आ	ऽ	इ	स	बैऽ	ऽऽ	मि	लि	बै	ऽ	ठ	त
नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	सा	–	रे	ग॒	रे	–	सा	–	ग	म	प	–
र	ह	त	च	हूँ	ऽ	दि	सि	घे	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
रे	म	प	ध	(नि॒)	–	ध	प	ध॒	प	ग॒	रे	म	ध	प	–
बि	प	ति	प	री	ऽ	त	ब	स	ब	सँ	ग	छाँ	ऽ	ड़े	ऽ
ग	–	ग	ग	ग	म	नि॒	प	ग॒	–	ग॒	–	रेम	ग॒रे	सा	रे
को	ऽ	उ	न	आ	ऽ	वै	ऽ	ने	ऽ	रे	ऽ	प्रीऽ	ऽऽ	त	म

क्यौं तू गोबिंद नाम......!

[राग तिलंग—तीनताल]

(३७)

क्यौं तू गोबिंद नाम बिसारौ ?
अजहूँ चेति, भजन करि हरि कौ, काल फिरत सिर ऊपर भारौ ॥
धन-सुत-दारा काम न आवैं, जिनहिं लागि आपुनपौ हारौ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु, चल्यौ पछिताइ, नयन जल ढारौ ॥

भावार्थ—अरे मनुष्य ! तूने श्रीगोविंद भगवान् के नाम को क्यों भुला रखा है ? तू यदि अपना भला चाहता है, तो अब भी आँखें खोल ले और परमात्मा के भजन में संलग्न होजा, क्योंकि तेरे सिर पर काल का भारी चक्र घूमता चला आरहा है। स्त्री, पुत्र और धन, जिनके लिए तू अपने जीवन की बाजी लगा रहा है, इनमें से कोई काम आनेवाला नहीं है। कवि-सम्राट् श्री सूरदासजी कहते हैं कि बिना भगवत्-भजन के मृत्यु के समय तुझे पछताना पड़ेगा और तेरी आँखों से आँसू बहते जाएँगे।

स्थायी •

२				०				३				×			
ग	म	ग	सा	नि़	सा	ग	ग	म	–	पनि॒	ग	म	–	म	–
क्यों	ऽ	तू	ऽ	गो	ऽ	बिं	द	ना	ऽ	मऽ	बि	सा	ऽ	रौ	ऽ
ग	म	ग	सा	सा	सा	ग	म	प	–	प	म	प	नि॒	प	म
क्यों	ऽ	तू	ऽ	अ	ज	हूँ	ऽ	चे	ऽ	ति	भ	ज	न	क	रि
प	म	ग	–	ग	म	प	प	नि॒	नि॒	म	प	सां	–	नि॒	प
ह	रि	कौ	ऽ	का	ऽ	ल·	फि	र	त	सि	र	ऊ	ऽ	प	र
म	–	ग	–												
भा	ऽ	रौ	ऽ	गोबिंद नाम……।											

अन्तरा •

०				३				×				२			
ग	म	प	नि॒प	नि	सां	सां	सां	पसां	–	नि॒	प	म	–	म	–
ध	न	सु	ऽत	दा	ऽ	रा	ऽ	काऽ	ऽ	म	न	आ	ऽ	वैं	ऽ
नि॒	नि॒	नि॒	नि॒	सां	नि॒	सां	–	प	नि॒	सां	–	नि॒	प	म	–
जि	न	हिं	ला	ऽ	गि	आ	ऽ	पु	न	पौ	ऽ	हा	ऽ	रौ	ऽ
प	–	म	ग	–	सा	नि़	नि़	सा	–	सा	नि़	सा	म	ग	ग
सू	ऽ	र	दा	ऽ	स	भ	ग	वं	ऽ	त	भ	ज	न	बि	नु
ग	म	प	प	पनि॒	मप	सां	सां	नि॒	प	म	म	प	म	ग	–
च	ल्यौ	प	छि	ताऽ	ऽऽ	इ	न	य	न	ज	ल	ढा	ऽ	रौ	ऽ
नि़	सा	ग	ग												
गो	ऽ	बिं	द	नाम….।											

जौ अपनौ मन हरि सौं......!

[तीनताल]

(३८)

जौ अपनौ मन हरि सौं राँचै ।
आन उपाय-प्रसंग छाँड़िकै, मन-बच-क्रम अनुसाँचै ॥
निसि-दिन नाम लेत ही रसना, फिर जु प्रेम-रस माँचै ।
इहिं बिधि सकल लोक मैं बाँचै, कौन कहै अब साँचै ॥
सीत-उष्न, सुख-दुख नहिं मानै, हर्ष-सोक नहिं खाँचै ।
जाइ समाइ सूर वा निधि मैं, बहुरि जगत नहिं नाचै ॥

भावार्थ—यदि मानव, अपने मन को परमात्मा की सेवा और भक्ति में लगादे तथा अन्य झंझटों को छोड़कर मन, वचन और शरीर से केवल उन्हीं का अनुयायी हो जाए एवं प्रेम और रस के मचान पर बैठकर दिन-रात प्रभु का ही नाम जपा करे, तो तीनों लोकों में उसकी रक्षा होगी। ऐसा भक्त फिर परमात्मा के अतिरिक्त किसी अन्य को सत्य नहीं मानेगा। न उसे फिर सर्दी-गर्मी किसी प्रकार का दुःख पहुँचा सकेंगी और न रंज और खुशी अपना प्रभाव डाल सकेंगे। भक्त श्रीसूरदासजी का कहना है कि उपर्युक्त संयम रखनेवाले मनुष्य को फिर इस संसार में जन्म लेकर भौतिक दुःख नहीं उठाने पड़ेंगे। उसकी मुक्ति हो जाएगी, अर्थात् वह श्रीपरब्रह्म परमात्मा में ही लीन हो जाएगा।

• **स्थायी**

०				३				×				२			
ग	म	रे	सा	रे	सा	ध़	ऩि	सा	सा	ग	–	म	–	म	–
जौ	ऽ	अ	प	नौ	ऽ	म	न	ह	रि	सौं	ऽ	राँ	ऽ	चै	ऽ
म	–	ध	ध	पध	ऩि	ध	प	म	ग	रे	ग	म	प	म	–
आ	ऽ	न	उ	पाऽ	ऽ	य	प्र	सं	ऽ	ग	छाँ	ऽ	ड़ि	कै	ऽ
ध़	ऩि	सा	ग	सा	ग	म	ध	पध	(ऩि)	ध	प	म	ग	रे	सा
म	न	ब	च	क्र	म	अ	नु	साँऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	चै	ऽ

• **अन्तरा**

ग	म	रे	सा	सा	–	सा	सा	–	रेसा	ध़	ऩि	सा	म	ग	–
नि	सि	दि	न	ना	ऽ	म	ले	ऽ	ऽत	ही	ऽ	र	स	ना	ऽ

ग	म	ध	ध	नि़	म	ध	नि	सां	–	–	–	नि़	–	ध	–
फि	रि	जु	प्रे	ऽ	म	र	स	माँ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	चै	ऽ
म	ध	ध	ध	म	नि़	नि़	ध	–	म	ग	म	रे	–	सा	–
इ	हिं	बि	धि	स	क	ल	लो	ऽ	क	मैं	ऽ	बाँ	ऽ	चै	ऽ
ध़	नि़	सा	ग	सा	ग	म	ध	पध	(नि़)	ध	प	म	ग	रे	सा
को	ऽ	न	क	है	ऽ	अ	ब	साँऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	चै	ऽ

जो घट अंतर हरि......!

[राग खमाज—तीनताल]

(३६)

जो घट अंतर हरि सुमिरै ।
ताको काल रूठि का करिहै, जो चित चरन धरै ॥
कोपै तात प्रहलाद भगत कौ, नामहिं लेत जरै ।
खंभ फारि नरसिंह प्रगट ह्वै, असुर के प्रान हरै ॥
सहस बरस गज युद्ध करत भए, छिन इक ध्यान धरै ।
चक्र धरे बैकुंठ तें धाए, वाकी पैज सरै ॥
अजामील द्विज सौं अपराधी, अन्तकाल बिडरै ।
सुत-सुमिरत नारायन-वानी, पार्षद धाइ परैं ॥
जहँ-जहँ दुसह कष्ट भक्तनि कौं, तहँ-तहँ सार करै ।
सूरजदास स्याम सेए तें, दुस्तर पार तरै ॥

भावार्थ—मानव, यदि अपने हृदय से श्रीनारायण प्रभु का स्मरण करता रहे और उन्हींके चरणारविन्दों में मन लगाए रखे, तो मृत्यु के कोप से भी उसका कुछ नहीं बिगड़ सकता । भक्त श्री प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप ने भगवत्-नाम से जलकर जब प्रह्लादजी की जान लेने का इरादा किया, उस समय श्रीभगवान् खम्भ में से नृसिंह-रूप धारण करके प्रकट होगए और अपने नाखूनों द्वारा तुरन्त ही उस राक्षस के प्राण हर लिए । गजराज को ग्राह से युद्ध करते हुए हजार वर्ष होगए, अन्त में जब गजराज को प्राण जाने का संकट दिखाई दिया, तो उसने सच्चे हृदय से केवल क्षण-मात्र ही प्रभु का ध्यान किया; भगवान् तुरन्त ही चक्र धारण किए हुए बैकुण्ठ से भागे गए तथा ग्राह का प्राणान्त करके गजराज की रक्षा की । अजामिल ब्राह्मण अपराधी था और उसकी पतित अवस्था थी, किन्तु मृत्यु के समय अपने पुत्र का नाम 'नारायण' पुकारने पर ही उसे भगवान् के सेवक स्वयं आकर लेगए । अन्य जहाँ कहीं भी भक्तों पर विपत्ति पड़ी, वहीं भगवान् ने उनकी रक्षा की । श्रीसूरदासजी कहते हैं कि भगवान् श्यामसुन्दर की सेवा करने से मनुष्य इस परम कठिन भव-सागर को आसानी से पार कर सकता है ।

• स्थायी

२				०				३				×			
नि	सां	नि॒	ध	म	प	म	गरे	नि़	सा	ग	म	प	नि॒	ध	–
जो	ऽ	घ	ट	अं	ऽ	त	रऽ	ह	रि	सु	मि	रै	ऽ	ऽ	ऽ
०				३				×				२			
ग	–	ग	–	ग	–	म	रेगरे	–	ग	म	प	गम	रेग	सा	–
ता	ऽ	कौ	ऽ	का	ऽ	ल	रूऽऽ	ऽ	ठि	का	ऽ	कऽ	रिऽ	है	ऽ
सा	–	ग	म	प	ध	ग	म	प	नि॒	ध	नि॒	पध	निसां	नि॒	ध
जो	ऽ	चि	त	च	र	न	ध	रै	ऽ	ऽ	ऽ	जो	ऽऽ	घ	ट

• अन्तरा

ग	म	नि॒ध	नि	सां	–	सां	–	नि	–	सां	सां	नि	सां	नि॒	ध
को	ऽ	पैऽ	ता	ऽ	त	प्र	ह	ला	ऽ	द	भ	ग	त	कौ	ऽ
सां	मं	गं	मं	रें	गं	नि	सां	म	नि॒	ध	नि॒	सां	गं॒	रें	सां
ना	ऽ	म	हिं	ले	ऽ	त	ज	रै	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ध	–	ध	ध	–	नि॒	प	ध	नि	(सां)	नि॒	धप	म	पध	म	ग
खं	ऽ	भ	फा	ऽ	रि	न	र	सिं	ऽ	ह	प्र	ग	ट	ह्वै	ऽ
सा	सा	ग	म	नि॒	धप	ग	म	नि॒	ध	नि॒	ध	नि	सां	नि॒	ध
अ	सु	र	के	प्रा	ऽऽ	न	ह	रै	ऽ	ऽ	ऽ	जो	ऽ	घ	ट



हरि बिन अपनौ को......!

[राग भैरवी—तीनताल]

(४०)

हरि बिन अपनौ को संसार।
माया-लोभ-मोह हैं चाँड़े काल-नदी की धार॥
ज्यौं जन-संगति होति नाव मैं, रहति न परसैं पार।
तैसैं धन-दारा-सुख-संपति, बिछुरत लगै न बार॥
मानुष-जनम, नाम नरहरि कौ, मिलै न बारंबार।
इहिं तन छन-भंगुर के कारन, गरबत कहा गंवार॥
जैसैं अंधौ अंध-कूप मैं, गनत न खाल-पनार।
तैसेहिं सूर बहुत उपदेसैं सुनि-सुनि गे कै बार॥

भावार्थ—सत्य बात तो यह है कि संसार में जीव का ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी अपना नहीं है। माया, मोह और लोभ—ये तीनों काल-रूपी नदी की प्रबल धाराएँ हैं। जिस प्रकार नाव में बैठे हुए लोगों से साथ हो जाता है और किनारे पर आने के बाद सब लोग बिछुड़ जाते हैं, उसी प्रकार मृत्यु के समय स्त्री, धन, सुख और सब प्रकार की सम्पत्ति को बिछुड़ते देर नहीं लगती। अरे पगले ! तू मनुष्य का शरीर पाकर घमण्ड करता है ! तेरा जीवन क्षण-भर के लिए भी तेरा नहीं है; किसी भी समय प्राणों का पंछी उड़ सकता है। इसलिए तू परमात्मा का भजन कर, फिर यह अवसर नहीं मिलेगा। भक्तराज श्रीसूरदासजी कहते हैं कि जिस प्रकार कोई अन्धा व्यक्ति, अन्ध-कूप में पड़ा रहकर अपने नीचे के स्थान को नहीं देख पाता, उसी प्रकार बहुत-से अविवेकी पुरुष बार-बार कहने पर भी भगवत्-भजन में श्रद्धा पैदा नहीं कर पाते।

स्थायी •

२				०				३				×			
					म										
ग	गरे	नि़	नि़	सा	ग	म	प	गम	–ग	सा	नि़	सा	–	–	सा
ह	रिऽ	बि	न	अ	प	नौ	ऽ	कोऽ	ऽऽ	सं	ऽ	सा	ऽ	ऽ	र
–	–,	–	–	सा	रे	नि़	–	सा	ग	ग	ग	म	म	गप	मग
ऽ	ऽ,	ऽ	ऽ	मा	ऽ	या	ऽ	लो	ऽ	भ	मो	ऽ	ह	हैंऽ	ऽऽ
सा	–	सा	–	प	–	प	ध	नि़सां	–	नि़रें	सांनि़	प	–	म	ग
चाँ	ऽ	ड़े	ऽ	का	ऽ	ल	न	दीऽ	ऽ	कीऽ	ऽऽ	धा	ऽ	ऽ	ऽ

					म		
म	ग॒	प	प	सा	ग॒	म	प
ऽ	ऽ	ऽ	र	अ	प	नौ	ऽ

• **अन्तरा**

०				३				×				२			
सा															
ग॒	–	ग॒	ग॒	म	–	म	म	प	–	मग॒	म	प	प	प	–
ज्यौं	ऽ	ज	न	सं	ऽ	ग	ति	हो	ऽ	तिऽ	ना	ऽ	व	मैं	ऽ
ध	नि॒	ध	नि॒	प	ध	ग	म	पध	नि॒	–	–	नि॒रें	सांनि॒	प	प
र	ह	ति	न	प	र	सैं	ऽ	पाऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	र
प	–	प	ध॒	सां	सां	सां	–	नि॒सां	रें	नि॒	नि॒	नि॒सां	-नि॒	प	प
तै	ऽ	सैं	ऽ	ध	न	दा	ऽ	राऽ	ऽ	सु	ख	संऽ	ऽऽ	प	ति
म	म	म	म	ग॒	ग॒म	प	म	ग॒म	–	–	–	ग॒प	मग॒	सा	–
बि	छु	र	त	ल	गैऽ	ऽ	न	बाऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	र
	म														
सा	ग॒	म	प												
अ	प	नौ	ऽ												

हरि बिनु मीत नहीं कोउ……!

[राग कर्नाटकी—तीनताल]

(४१)

हरि बिनु मीत नहीं कोउ तेरे ।
सुनि मन, कहौं पुकारि तोसौं हौं, भजि गोपालहिं मेरे ॥
या संसार बिषय-बिष-सागर, रहत सदा सब घेरे ।
सूर स्याम बिनु अंतकाल मैं कोउ न आवत नेरे ॥

भावार्थ—अरे मन ! तू सुनता क्यों नहीं ? मैं तुझसे चिल्ला-चिल्लाकर कहता हूँ कि तू मेरे श्यामसुन्दर का भजन कर । उनके अतिरिक्त संसार में तेरा कोई मित्र नहीं है । यह संसार विष भरा हुआ समुद्र है; इसमें विष-रूपी अनेक प्रकार के विषय तुझे घेरे रहते हैं । श्रीसूरदासजी का कहना है कि मृत्यु के समय कोई भी पास नहीं फटकता, केवल ईश्वर का भजन ही साथ चलता है ।

स्थायी •

२				०				३				×			
सा	रे	ग	प	ग	–	रे	सा	रे	ध़	सा	रे	ग	–	रे	–
ह	रि	बि	नु	मी	ऽ	त	न	हीं	ऽ	को	उ	ते	ऽ	रे	ऽ
सा	रे	ग	प	प	प	प	ध	सां	सां	–	सां	गं	रें	सां	–
ह	रि	बि	नु	सु	नि	म	न	क	हौं	ऽ	पु	का	ऽ	रि	ऽ
नि	ध	प	–	सां	सां	सां	सां	नि	–	ध	प	म	ध	प	–
तो	ऽ	सौं	हौं	भ	जि	गो	ऽ	पा	ऽ	ल	हिं	मे	ऽ	रे	ऽ
सा	रे	ग	प												
ह	रि	बि	नु	मीत नहीं……।											

अन्तरा •

०				३				×				२			
प	–	प	ध	सां	–	सां	सां	ध	सां	रें	गं	सां	गं	गं	गं
या	ऽ	सं	ऽ	सा	ऽ	र	बि	ष	य	बि	ष	सा	ऽ	ग	र
रें	गं	रें	सां	सां	प	प	ध	गं	रें	सां	–	–	–	–	–
र	ह	त	स	दा	ऽ	स	ब	घे	ऽ	रे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ध	सां	सां	प	नि	ध	प	प	ग	प	म	ग	–	रे	सा	–
सू	ऽ	र	स्या	ऽ	म	बि	नु	अं	ऽ	त	का	ऽ	ल	मैं	ऽ
प	–	प	ध	सां	नि	ध	प	म	ध	प	–	सा	रे	ग	प
को	ऽ	उ	न	आ	ऽ	व	त	ने	ऽ	रे	ऽ	ह	रि	बि	नु

जा दिन मन पंछी......!

[राग जैजैवन्ती—तीनताल]

(४२)

जा दिन मन पंछी उड़ि जैहै ।
ता दिन तेरे तन-तरुवर के सबै पात झरिजैहैं ।।
या देही कौ गरब न करियै, स्यार-काग-गिध खैहैं ।
तीननि मैं तन कृमि, कै बिष्टा, कै ह्वै खाक उड़ैहै ।।
कहँ वह नीर, कहाँ वह सोभा, कहँ रंग-रूप दिखैहै ।
जिन लोगनि सौं नेह करत है, तेई देखि घिनैहैं ।।
घर के कहत सबारे काढ़ौ, भूत होइ धरि खैहैं ।
जिन पुत्रनिहिं बहुत प्रतिपाल्यौ, देवी-देव मनैहैं ।।
तेई लै खोपरी बाँस दै, सीस फोरि बिखरैहैं ।
अजहूँ मूढ़ करौ सतसंगति, संतन मैं कछु पैहै ।।
नर-बपु धारि नाहिं जन हरि कौं, जम की मार सो खैहै ।
सूरदास भगवंत-भजन बिनु बृथा सु जनम गँवैहै ।।

भावार्थ—जिस दिन मनुष्य का मन-रूपी पक्षी उड़ जाएगा, अर्थात् मृत्यु हो जाएगी, उसी दिन उसके शरीर-रूपी वृक्ष के सब पत्ते भी गिर पड़ेंगे। इस शरीर का घमण्ड करना बेकार है, क्योंकि मृत्यु के पश्चात् इसे गीदड़, कौवे और गिद्ध ही खाएँगे अथवा इसमें कीड़े पड़ जाएँगे, विष्ठा में मिल जाएगा या इसकी धूल बनकर उड़ती फिरेगी। न फिर वह पानी रहेगा और न वह शोभा और न वह रंग-रूप ही दिखाई देगा। उस समय तेरी अवस्था को देखकर वही लोग घृणा करने लगेंगे, जो आज तुझपर थोथा स्नेह दिखाते हैं। प्राणों का पंछी उड़ते ही सब घर के लोग कहेंगे कि इसे शीघ्र ही श्मशान ले जाओ, अन्यथा भूत बनकर हमें खा जाएगा। जिन बेटों का अनेक देवी-देवताओं को मना-मनाकर पालन-पोषण किया गया है, वही मरघट में खोपड़ी को बाँस मार-मारकर तोड़ डालेंगे। इसलिए यदि मनुष्य को अपना परलोक सँवारना है, तो आज ही वह साधुओं का सत्संग करना प्रारम्भ करदे, वहीं उसे कुछ काम आनेवाली वस्तु मिलेगी।

श्रीसूरदासजी कहते हैं कि मनुष्य का चोला पाकर जो भगवान् का भक्त नहीं बना, उसे अवश्य ही यमराज की मार खानी पड़ेगी और बिना भगवत्-भजन किए उसका यह सुन्दर जन्म बिल्कुल बेकार चला जाएगा।

• स्थायी

०				३				×				२			
रे	ग॒	रे	सा	नि़	सा	ध़	नि़॒	रे	–	रे	ग	म	प	ग	म
जा	ऽ	दि	न	म	न	पं	ऽ	छी	ऽ	उ	ड़ि	जै	ऽ	है	ऽ

नि़	-	नि़	नि़	सा	-	सा	-	रे	ग॒	रे	सा	नि़॒	ध़	प़	-
ता	ऽ	दि	न	ते	ऽ	रे	ऽ	त	न	त	रु	व	र	के	ऽ
रे	रे	-	रे	-	ग	म	प	-	म	ग	म	रे	ग॒	रे	सा
स	बै	ऽ	पा	ऽ	त	भ	रि	ऽ	जै	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	हैं	ऽ

अन्तरा •

म	-	ध	नि॒	सां	नि॒	सां	-	सां	नि॒	ध	प	म	ग	म	-
या	ऽ	दे	ऽ	ही	ऽ	कौ	ऽ	ग	र	ब	न	क	रि	यै	ऽ
ग	-	ग	ग	-	म	प	ध	नि॒	-	ध	-	प	-	म	ग
स्या	ऽ	र	का	ऽ	ग	गि	ध	खै	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	हैं	ऽ
ग	म	नि॒	नि॒	ध	प	ध	प	धप	म	ग	म	रे	ग॒	रे	सा
ती	ऽ	न	नि	मैं	ऽ	त	न	कृऽ	मि	ऽ	कै	बि	ऽ	ष्टा	ऽ
प़	रे	रे	-	रे	ग	म	धप	म	-	ग	म	रे	ग॒	रे	सा
कै	ऽ	ह्वै	ऽ	खा	ऽ	क	उऽ	ड़ै	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	है	ऽ

हमारे निर्धन के धन......!

[राग बहार—तीनताल]

(४३)

हमारे निर्धन के धन राम।
चोर न लेत, घटत नहिं कबहूँ, आवत गाढ़ैं काम ॥
जल नहिं बूड़त, अगिनि न दाहत, है ऐसौ हरि-नाम।
बैकुंठनाथ सकल सुख-दाता, सूरदास-सुखधाम ॥

भावार्थ—हम गरीबों का धन भगवान् राम का नाम है। इसको न कोई चोर चुरा सकता है और न यह कभी घट सकता है, बल्कि कठिन विपत्ति में काम आया करता है। यह ऐसा धन है, जिसको न जल डुबो सकता है और न अग्नि ही जला सकती है। सूरदासजी कहते हैं कि बैकुण्ठ के स्वामी श्रीरामचन्द्र भगवान् सब सुखों के भण्डार हैं तथा सब प्रकार के सुखों को देनेवाले हैं।

- **स्थायी**

२				०				३				×			
															धनि
															हऽ
सांरें	गुंरें	सांनि	सां	–	निसां	नि	प	मग	म	प	मग	म	–	–	म
माऽ	ऽऽ	रेऽ	ऽ	ऽ	निर्	ध	न	केऽ	ऽ	ध	नऽ	रा	ऽ	ऽ	म
ग	म	रे	सा	सा	सा	म	म	म	–	म	प	ग	ग	म	म
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	चो	ऽ	र	न	ले	ऽ	त	घ	ट	त	न	हिं
रे	रे	सा	–	सा	–	म	म	म	प	ग	म	नि	नि	सां	सां
क	ब	हूँ	ऽ	आ	ऽ	व	त	गा	ऽ	ढ़ैं	ऽ	का	ऽ	ऽ	ऽ
रें	रें	सां	–	निध											
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽम निर्धन……।											

- **अन्तरा**

०				३				×				२			
म	म	म	म	म	प	ग	म	म	नि	ध	नि	सां	–	सां	सां
ज	ल	न	हिं	बू	ऽ	ड़	त	अ	गि	नि	न	दा	ऽ	ह	त
नि	–	नि	ध	नि	–	सां	सां	ध	–	नि	सां	नि	प	म	म
है	ऽ	ऐ	ऽ	सौ	ऽ	ह	रि	ना	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	म
गं	–	गं	मं	रें	–	सां	सां	नि	ध	नि	नि	सां	–	सां	–
बै	ऽ	कुं	ठ	ना	ऽ	थ	स	क	ल	सु	ख	दा	ऽ	ता	ऽ
सा	म	म	म	म	प	ग	म	नि	ध	सां	नि	रें	–	सां	सां
सू	ऽ	र	दा	ऽ	स	सु	ख	धा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	म
निध															
ऽऽ निर्धन……।															

बंदौं चरन-सरोज......!

[तीनताल]

(४४)

बंदौं चरन-सरोज तिहारे ।
सुंदर स्याम कमल-दल-लोचन, ललित त्रिभंगी प्रान-पियारे ॥
जे पद-पदुम सदा सिव के धन, सिंधु-सुता उर तैं नहिं टारे।
जे पद-पदुम तात-रिस-त्रासत, मन-बच-क्रम प्रहलाद सँभारे ॥
जे पद-पदुम-परस-जल-पावन-सुरसरि-दरस कटत अघ भारे ।
जे पद-पदुम-परस रिषि-पतिनी, बलि, नृग, व्याध, पतित बहु तारे ॥
जे पद-पदुम रमत बृन्दाबन अहि-सिर धरि, अगनित रिपु मारे।
जे पद-पदुम परसि ब्रज-भामिनि सरबस दै, सुत-सदन बिसारे ॥
जे पद-पदुम रमत पांडव-दल दूत भए, सब काज सँवारे ।
सूरदास तेई पद-पंकज त्रिबिध-ताप-दुख-हरन हमारे ॥

भावार्थ—हे प्रभु ! मैं आपके कमलवत् चरणों की वन्दना करता हूँ ! आपके सुन्दर काले-काले नेत्र कमल की पंखुड़ियों के समान हैं और त्रिभंगी (तीन जगह से मुड़कर खड़े होने का दृश्य) मन को मोहित करनेवाली है। यही चरण-कमल भगवान् शंकर का धन हैं और श्रीलक्ष्मीजी भी सदैव इनको अपने हृदय में धारण किए रहती हैं। अपने पिता के क्रोध से डरकर भक्तराज प्रह्लाद ने इन्हीं कमलवत् चरणों का सहारा लिया था और इन्हीं चरणों के स्पर्श से गंगा नदी का जल पवित्र होगया, जिसमें स्नान करने से अथवा उस नदी के दर्शन-मात्र से ही मनुष्य के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं ! केवल यही नहीं, इन चरणों के स्पर्श से अहिल्या, राजा बली, राजा नृग और व्याध इत्यादि अनेक पतितों का उद्धार होगया। वृन्दावन में रमण करते समय इन चरणों ने कालिय नाग आदि बहुत-से दुष्टों का संहार भी किया। ब्रज की गोपियाँ इन चरणों की सेवा में संलग्न होकर पुत्र, गृह आदि सबको भूल गईं तथा अपना सर्वस्व निछावर कर बैठीं। महाभारत के युद्ध के समय पांडवों के पक्ष ने भी इन्हीं चरणों का सहारा लिया था। भगवान् स्वयं उनके दूत बने और अन्त में उन्हें विजयी बनाया। अरे सूरदास ! वही चरणकमल अपने भी तीनों प्रकार के संतापों (दैहिक, दैविक, भौतिक) को दूर करेंगे।

स्थायी

२				०				३				×			
सा	रे	ग	प	-	धसां	सां	ध	प	-	ग	सा	ग	प	प	-
बं	ऽ	दौं	ऽ	ऽ	चर	न	स	रो	ऽ	ज	ति	हा	ऽ	रे	ऽ
सा	रे	ग	प	प	ध	म	म	म	प	म	ग	ग	म	ग	सा
बं	ऽ	दौं	ऽ	सुं	ऽ	द	र	स्या	ऽ	म	क	म	ल	द	ल

सा	ग॒	प	प	प	ध॒	प	ध॒	नि	–	सां	–	नि	–	सां	रें
लो	ऽ	च	न	ल	लि	त	त्रि	भं	ऽ	गी	ऽ	प्रा	ऽ	न	पि
सां	नि	ध॒	प	ध॒	सां	सां	ध॒								
या	ऽ	रे	ऽ	च	र	न	स								

• अन्तरा

०				३				×				२			
प	ध॒	प	ध॒	सां	सां	सां	सां	सां	रें	सांरें	गं॒	रें	सां	सां	सां
जे	ऽ	प	द	प	दु	म	स	दा	ऽ	सिऽ	व	के	ऽ	ध	न
प	गं॒	रें	सां	नि॒	प	प	ध॒	नि॒	प	ध॒	म	प	ग॒	म	प
सिं	ऽ	धु	सु	ता	ऽ	उ	र	तैं	ऽ	न	हिं	टा	ऽ	रे	ऽ
प	ध॒	प	म	म	प	म	ग॒	म	ग॒	ग॒	सा	ग॒	प	प	प
जे	ऽ	प	द	प	दु	म	ता	ऽ	त	रि	स	आ	ऽ	स	त
नि	नि	नि	नि	नि	नि	सां	रें	नि	–	सां	सां	नि	ध॒	प	–
म	न	ब	च	क्र	म	प्र	ह	ला	ऽ	द	सैं	भा	ऽ	रे	ऽ
ध	सां	सां	सां												
च	र	न	स												

हरि जू, तुमतैं कहा न……!

[राग देसी—तीनताल]

(४५)

हरि जू, तुमतैं कहा न होइ ?
बोलै गुंग, पंगु गिरि लंघै अरु आवै अंधौ जग जोइ ॥
पतित अजामिल, दासी कुबिजा, तिनके कलिमल डारे धोइ ।
रंक सुदामा कियौ इंद्र-सम, पांडव-हित-कौरव-दल खोइ ॥
बालक मृतक जिवाइ दए प्रभु, तब गुरु-द्वारें आनंद होइ ।
सूरदास प्रभु इच्छापूरन, श्रीगुपाल सुमिरौ सब कोइ ॥

भावार्थ—हे प्रभु ! आप क्या नहीं कर सकते ? अर्थात् सब-कुछ कर सकते हैं। आपकी कृपा से गूँगा व्यक्ति बोल उठता है, लँगड़ा पर्वतों को लाँघ सकता है और अन्धा संसार के कोने-कोने को छान सकता है। कुब्जा और अजामिल जैसे पापियों के उद्धार करनेवाले आप ही तो हैं। सुदामा-जैसे दरिद्री ब्राह्मण को इन्द्र के समान धनी बना देना और पांडवों की भलाई के लिए कौरव-वंश का विनाश कर देना—ये सब असाधारण कार्य आपके ही द्वारा किए गए हैं। अपने गुरु के मरे हुए पुत्रों को जीवित करके उनके घर पर आनन्द की घड़ियाँ लाने का काम भी आपका ही था। सूरदासजी का कहना है कि भगवान् सदैव अपने भक्तों की इच्छा पूर्ण किया करते हैं, अतः सभी को उनका स्मरण करना चाहिए।

स्थायी •

२				०				३				×			
रे	म	प	ध	म	प	ग॒	रे	रे	ग॒	-	सा	रे	नि़	सा	-
ह	रि	जू	ऽ	तु	म	तैं	ऽ	क	हा	ऽ	न	हो	ऽ	इ	ऽ
रे	ग	रे	सा	रे	म	पध	मप	रे	ग॒	रेग॒	सा	रे	नि़	सा	-
ह	रि	जू	ऽ	तु	म	तैंऽ	ऽऽ	क	हा	ऽ	न	हो	ऽ	इ	ऽ
रे	ग	रे	सा	नि़	-	सा	-	ध़	-	प़	सा	-	सा	सा	सा
ह	रि	जू	ऽ	बो	ऽ	लै	ऽ	गुं	ऽ	ग	पं	ऽ	गु	गि	रि
रे	-	सा	-	रे	रे	म	-	प	-	सां	-	सां	प	ध॒	प
लं	ऽ	घै	ऽ	अ	रु	आ	ऽ	वै	ऽ	अं	ऽ	धौ	ऽ	ज	ग
म	प	ग॒	रे	रे	म	पध	मप	रे	ग॒	रेग॒	सा	रे	नि़	सा	-
जो	ऽ	इ	ऽ	तु	म	तैंऽ	ऽऽ	क	हा	ऽऽ	न	हो	ऽ	इ	ऽ

अन्तरा •

०				३				×				२			
म	म	प	प	सां	-	सां	सां	नि॒	-	सां	-	रें	रें	सां	-
प	ति	त	अ	जा	ऽ	मि	ल	दा	ऽ	सी	ऽ	कु	बि	जा	ऽ
रें	गं॒	रें	सां	रें	नि॒	सां	सां	सां	-	प	-	ध	मप	ग॒	रे
ति	न	के	ऽ	क	लि	म	ल	डा	ऽ	रे	ऽ	धो	ऽऽ	इ	ऽ
रे	म	पध	मप												
तु	म	तैंऽ	ऽऽ												

बिनती करत मरत हौं······!

[राग यमनकल्याण—तीनताल]

(४६)

बिनती करत मरत हौं लाज ।
नख-सिख लौं मेरी यह देही है पाप की जहाज ॥
और पतित आवत न आँखि-तर देखत अपनौ साज ।
तीनौं पन भरि ओर निबाह्यौ तऊ न आयौ बाज ॥
पाछैं भयौ न आगैं ह्वै है, सब पतितनि सिरताज ।
नरकौ भज्यौ नाम सुनि मेरौ, पीठि दई जमराज ॥
अबलौं नान्हे-नून्हे तारे, ते सब बृथा अकाज ।
साँचें बिरद सूर के तारत, लोकनि-लोक अवाज ॥

भावार्थ—हे प्रभो ! आपकी प्रार्थना करते समय मुझे शर्म आती है । क्योंकि नाखूनों से लेकर चोटी तक मेरा शरीर पाप के जहाज के समान बना हुआ है । संसार में मुझे अपने समान नीच कोई दूसरा दिखाई नहीं पड़ता । मैंने अपनी तीनों अवस्थाओं (बाल्यकाल, युवाकाल और प्रौढ़ावस्था) को विषय आदि में ही आसक्त रहकर गँवा दिया और अब चौथी अवस्था (बुढ़ापे) में भी मुझे शर्म नहीं । मेरे समान नीच न कोई पहले हुआ है और न आगे होगा । मैं नीचों का सिरताज हूँ । मेरा नाम सुनकर नरक तथा यमराज भी भागने लगते हैं । सूरदासजी कहते हैं कि हे पतितपावन ! अब तक आपने छोटे-मोटे पापियों को ही तारा है, जिसका कोई महत्त्व नहीं । जब आप मुझ-जैसे पापियों के सिरताज को इस भवसागर से तारेंगे, तभी लोक-लोक में आपकी सच्ची कीर्ति फैलेगी ।

• स्थायी

०				३				×				२			
														नि़	रे
														बि	न
गर्म	प	-	पर्म	ग	रे	सा	नि़	ध़	नि़	ध़	सा	-	सा	-	-
तीऽ	ऽ	ऽ	कऽ	र	त	म	र	त	हौं	ऽ	ला	ऽ	ज	ऽ	ऽ
सा	नि़	ध़	नि़	सा	-	सा	सा	ग	म	ग	रे	सा	रे	सा	-
न	ख	सि	ख	लौं	ऽ	मे	री	य	ह	दे	ऽ	ही	ऽ	ऽ	ऽ
नि़	रे	ग	रे	ग	म	-	निध	प	मं	ग	म	ग	रे	नि़	रे
है	ऽ	पा	ऽ	प	की	ऽ	जऽ	हा	ऽ	ऽ	ऽ	ज	ऽ	बि	न

अन्तरा ●

०				३				×				२			
प	ग	प	ग	प	ध	प	–	मं	ध	नि	मं	–	ध	प	प
औ	ऽ	र	प	ति	त	आ	ऽ	व	त	न	आँ	ऽ	खि	त	र
ग	–	ग	ग	ग	रे	ग	(नि)	प	–	–	–	ग	म	ग	रे
दे	ऽ	ख	त	अ	प	नौ	ऽ	सा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज
नि	नि	नि	ध	सां	सां	सां	सां	ध	नि	प	ग	मं	ध	प	–
ती	ऽ	नौं	ऽ	प	न	भ	रि	ओ	ऽ	र	नि	बा	ऽ	ह्यौ	ऽ
नि़	रे	–	रे	ग	रे	ग	नि	प	–	ग	म	ग	रे	नि़	रे
त	ऊ	ऽ	न	आ	ऽ	यौ	ऽ	बा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज	बि	न

अब कैं राखि लेहु......!

[राग मधुवन्ती—तीनताल]

(४७)

अब कैं राखि लेहु भगवान।
हौं अनाथ बैठ्यौ द्रुम-डरिया, पारधि साधे बान॥
ताकें डर मैं भाज्यौ चाहत, ऊपर ढुक्यौ सचान।
दुहूँ भाँति दुख भयौ आनि यह, कौन उबारै प्रान?
सुमिरत ही अहि डस्यौ पारधी, कर छूट्यौ संधान।
सूरदास सर लग्यौ सचानहिं, जय-जय कृपानिधान॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर! अबकी बार मेरी रक्षा अवश्य कीजिए! मेरी अवस्था ठीक उस असहाय पंछी के समान है, जो वृक्ष की डाल पर बैठा हुआ था। नीचे शिकारी तीर साधे खड़ा था और ऊपर बाज मँडरा रहा था। जब वह दोनों ओर से घिर गया और किसी प्रकार प्राण बचते न दिखाई दिए, तब उसने हे प्रभु! आपका ही स्मरण किया। स्मरण करते ही शिकारी को उसी क्षण साँप ने काट खाया। उसके हाथ से तीर भी उसी समय छूट गया, जिससे ऊपरवाले बाज की मृत्यु होगई। सूरदासजी कहते हैं कि प्रभो! ऐसी असहाय अवस्था में रक्षा करनेवाले आप ही हैं। हे कृपा के भंडार! आपकी जय हो, जय हो।

• स्थायी

२				०				३				×			
रे	ग॒	म॑	प	म॑प	ध	प	म॑ग॒	म॑	ग॒	रे	सा	रे	–	–	–
अ	ब	कैं	ऽ	राऽ	ऽ	खि	लेऽ	ऽ	हु	भ	ग	वा	ऽ	ऽ	ऽ
सा	–	–	–	प	ग॒	म॑	प	–	प	प	–	ग॒	म॑	प	प
न	ऽ	ऽ	ऽ	हौं	ऽ	अ	ना	ऽ	थ	बै	ऽ	ठ्यौ	ऽ	द्रु	म
						म									
म॑	ग॒	रे	सा	नि़	सा	ग॒	म॑	प	–	ग॒	म॑	पनि॒	–	–	–
ड	रि	या	ऽ	पा	ऽ	र	धि	सा	ऽ	धे	ऽ	बाऽ	ऽ	ऽ	ऽ
पध	–	प	–												
ऽऽ	ऽ	न	ऽ	राखि लेहु...........।											

• अन्तरा

०				३				×				२			
										सां		प			
प	–	ग॒	म॑	प	प	प	–	म॑	प	नि॒	–	ध	–	प	प
ता	ऽ	कैं	ऽ	ड	र	मैं	ऽ	भा	ऽ	ज्यौ	ऽ	चा	ऽ	ह	त
म॑	प	नि॒	नि॒	नि॒ध	प	ध	म॑	प	–	–	–	पध	पम॑	ग॒म॑	प
ऊ	ऽ	प	र	द्रुऽ	क्यौ	ऽ	स	चा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	न
म॑	प	–	प	म॑	ध	प	प	ग॒	म॑	–	ग॒	रे	रे	सा	सा
दु	हूँ	ऽ	भाँ	ऽ	ति	दु	ख	भ	यौ	ऽ	आ	ऽ	नि	य	ह
नि	सां	गं॒	रें	सां	नि	ध	प	ग॒	म॑	–	ग॒	प	म॑	ध	ध
कौ	ऽ	न	उ	बा	ऽ	रै	ऽ	प्रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न

राखि लेहु...........।

हृदय की कबहुँ न जरनि......!

[राग दरबारी—तीनताल]

(४८)

हृदय की कबहुँ न जरनि घटी ।
बिनु गोपाल बिथा या तन की कैसें जाति कटी ॥
अपनी रुचि जित ही जित ऐंचति इन्द्रिय-कर्म-गटी ।
हौं तित हीं उठि चलत कपट लगि, बाँधे नैन-पटी ॥
झूठौ मन, झूठी सब काया, झूठी आरभटी ।
अरु झूठनि के बदन निहारत मारत फिरत लटी ॥
दिन-दिन हीन छीन भइ काया, दुख-जंजाल-जटी ।
चिंता कीन्हैं भूख भुलानी, नींद फिरति उचटी ॥
मगन भयौ माया-रस लंपट, समुझत नाहिं हटी ।
ताकैं मूँड़ चढ़ी नाचति है मीचऽति नीच नटी ॥
किंचित स्वाद स्वान-बानर ज्यौं, घातक रीति ठटी ।
सूर सुजल सींचियै कृपानिधि, निज जन चरन-तटी ॥

भावार्थ—हृदय में वासनाओं की आग जलती ही रहती है। इसके शान्त होने का एक-मात्र उपाय भगवत्-भजन ही है। हृदय इन्द्रियों का गुलाम बनकर उनके इशारे पर नाचता रहता है। जिधर को भी वे आज्ञा देती हैं, आँखों से पट्टी बाँधकर उधर ही चल देता है। सच बात तो यह है कि ऐसा हृदय भी झूठा है, शरीर भी झूठा है और वह सब ऐश्वर्य भी झूठा है, जिस पर मनुष्य को घमण्ड रहता है। हर समय वह झूठों के ही साथ रहता है एवं अपनी झूठी शेखी मारता फिरता है। सांसारिक दुःख और प्रपंचों में पड़कर यह शरीर दिन-पर-दिन घट रहा है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो चिन्ताओं के कारण न भूख लगती है, न नींद आती है। अरे नीच प्राणी! फिर भी तू इस माया के विष-रूपी रस में डूबकर आनन्द मना रहा है। शायद तू नहीं जानता कि तेरे सिर पर काल-रूपी दुष्ट नटिनी नृत्य कर रही है। तूने क्षण-मात्र के सुख के लिए कुत्ते और बन्दरों जैसी घातक नीति अपना रखी है। सूरदासजी कहते हैं कि अरे प्राणी! यदि तू अपना कल्याण चाहता है, तो श्री श्यामसुन्दर के चरणों की नदी के जल में डुबकी लगाने का प्रयत्न कर। ऐसा करने से तू प्रभु का हो जाएगा और प्रभु तेरे।

स्थायी

०				३				×				२			
म	म	रे	सा	नि॒	सा	रे	प	म ग॒	–	–	म	रे	रे	सा	–
क	ब	हुँ	न	ज	र	नि	घ	टी	ऽ	ऽ	हृ	द	य	की	ऽ

नि़	प़	नि़	-	सा	-	सा	सा	नि़	सा	रे	-	नि़	सा	नि़	प़
बि	नु	गो	ऽ	पा	ऽ	ल	बि	था	ऽ	या	ऽ	त	न	की	ऽ
म	-	म	-	प	-	म	पनि॒	(म)ग॒	-	-	म	रे	रे	सा	-
कै	ऽ	सें	ऽ	जा	ऽ	ति	कऽ	टी	ऽ	ऽ	हृ	द	य	की	ऽ

● अन्तरा

म	म	प	-	ध॒	ध॒	नि॒	नि॒	सां	-	सां	-	रें	नि॒	सां	सां
अ	प	नी	ऽ	रु	चि	जि	त	ही	ऽ	जि	त	ऐं	ऽ	च	ति
नि॒	-	नि॒	नि॒	सां	सां	सां	सांरें	ध॒	-	-	-	नि॒	-	प	-
इं	ऽ	द्रि	य	क	र्	म	गऽ	टी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
म	-	प	प	सां	-	सां	-	(म)ग॒	(म)ग॒	(म)ग॒	म	रे	रे	सा	सा
हौं	ऽ	ति	त	हीं	ऽ	उ	ठि	च	ल	त	क	प	ट	ल	गि
म	-	म	-	प	-	प	पनि॒	(म)ग॒	-	-	म	रे	रे	सा	-
बाँ	ऽ	धे	ऽ	नै	ऽ	न	पऽ	टो	ऽ	ऽ	हृ	द	य	की	ऽ

मेरौ मन मति-हीन……!

[राग काफी—तीनताल]

(४६)

मेरौ मन मति-हीन गुसाईं !
सब सुख-निधि पदकमल छाँड़ि, स्रम करत स्वान की नाईं ॥
फिरत बृथा भाजन अवलोकत, सूनें सदन अजान ।
तिहिं लालच कबहूँ, कैसेंहू, तृप्ति न पावत प्रान ॥
कौर-कौर-कारन कुबुद्धि, जड़, किते सहत अपमान ।
जहँ-जहँ जात तहीं-तहिं त्रासत अस्म, लकुट, पद-त्रान ॥
तुम सर्वज्ञ, सबै बिधि पूरन, अखिल-भुवन-निज-नाथ ।
तिन्हैं छाँड़ि यह सूर महा सठ, भ्रमत भ्रमनि कैं साथ ॥

भावार्थ—हे सर्वश्रेष्ठ ! मेरा हृदय वास्तव में मूर्ख है; क्योंकि सर्व सुखों के समुद्र आपके चरण-कमलों को छोड़कर, क्षणिक सुख के लिए कुत्ते के समान बना हुआ है। सूने घरों में चोरी-चोरी खाली बर्तनों को सूँघता फिरता है। केवल इसीलिए कि कहीं किसी प्रकार कुछ पेट में पड़ जाए। इससे और अधिक मूर्ख कौन होगा, जो टुकड़े-टुकड़े के लिए जगह-जगह अपमान सहता है, किन्तु पेट फिर भी नहीं भरपाता। जहाँ भी जाता है, वहीं पत्थर, डण्डे और जूतों से उसका स्वागत होता है। अरे सूरदास ! सब बातों के जाननेवाले, सब प्रकार पूर्ण और सब भुवनों के स्वामी, अपने श्यामसुन्दर प्रभु को छोड़कर तू पागलों के साथ घूम रहा है, निःसंदेह तू बड़ा नीच है।

स्थायी •

२				०				३				×			
सा	-	प	-	म	ग	म	म	ग	रे	सा	नि़	सा	ग	रे	-
मे	ऽ	रौ	ऽ	म	न	म	ति	ही	ऽ	न	गु	सा	ऽ	ईं	ऽ
सा	-	प	-	नि़	नि़	नि़	नि़	सा	सा	सा	सा	सा	प	प	ग
मे	ऽ	रौ	ऽ	स	ब	सु	ख	नि	धि	प	द	क	म	ल	छाँ
-	रे	सा	सा	प	प	प	पध	सां	ध	सां	-	सां	नि	ध	प
ऽ	ड़ि	स्र	म	क	र	त	स्वाऽ	ऽ	न	की	ऽ	ना	ऽ	ऽ	ऽ
म	ग	रे	-	रे	प	म	प	ग	रे	सा	नि़	सा	ग	रे	-
ऽ	ऽ	ईं	ऽ	म	न	म	ति	ही	ऽ	न	गु	सा	ऽ	ईं	ऽ

अन्तरा •

म	म	प	ध	नि	-	सां	-	नि	ध	नि	सां	निसां	निध	प	प
फि	र	त	बृ	था	ऽ	भा	ऽ	ज	न	अ	व	लोऽ	ऽऽ	क	त
ग	-	ग	-	सा	ग	म	प	म	-	ग	म	ग	-	रे	रे
सू	ऽ	नैं	ऽ	स	द	न	अ	जा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न
ध	ध	ध	-	ध	ध	ध	ध	ध	नि	ध	प	ध	नि	सां	-
ति	हिं	ला	ऽ	ल	च	क	ब	हैं	ऽ	कै	ऽ	सैं	ऽ	हैं	ऽ
गं	रें	गं	सां	रें	नि	सां	सां	सां	नि	ध	प	म	ग	रे	-
तृ	ऽ	म्रि	न	पा	ऽ	व	त	प्रा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	न
रे	प	म	प												
म	न	म	ति												

तुम प्रभु, मोसौं बहुत……!

[राग गौड़सारंग—तीनताल]

(५०)

तुम प्रभु, मोसौं बहुत करी ।
नर-देही दीनी सुमिरन कौं, मो पापी तैं कछु न सरी ॥
गरभ-बास, अति त्रास, अधोमुख, तहाँ न मेरी सुधि बिसरी ।
पावक-जठर जरन नहिं दीन्हौ, कंचन-सी मम देह करी ॥
जग मैं जनमि पाप बहु कीन्हे, आदि-अन्त लौं सब बिगरी ।
सूर पतित, तुम पतित-उधारन, अपने बिरद की लाज धरी ॥

भावार्थ—हे भगवान् ! आपने मुझ पर बहुत कृपा की है। आपने मुझे मनुष्य का शरीर दिया, ताकि मैं भजन करके भव-सागर से पार हो जाऊँ, किन्तु मैं ऐसा पापी हूँ कि कुछ भी न कर सका। मैं गर्भ में नीचे को मुँह किए हुए अत्यन्त कष्ट पारहा था, वहाँ भी मेरी रक्षा की। प्रचण्ड जठराग्नि से मेरे शरीर को जलने से बचाया, बल्कि उसको सोने के तुल्य-बना दिया। लेकिन मैं बाहर आते ही आपको भूल गया। जीवन-भर पाप कमा-कमाकर अपने अन्त समय को बिगाड़ बैठा। वास्तव में सूरदास पतित है और आप पतितों का उद्धार करनेवाले हैं, अतः आपको अपना यश रखने के लिए उसका उद्धार करना ही पड़ेगा।

• स्थायी

२				०				३				×			
मं	ध	मं	प	म	ग	रे	सा	सा	रे	नि॒	सा	म	–	ग	–
तु	म	प्र	भु	मो	ऽ	सौं	ऽ	ब	हु	त	क	री	ऽ	ऽ	ऽ
मं	ध	मं	प	सा	सा	म	ग	प	–	प	–	धनि	सां	ध	प
तु	म	प्र	भु	न	र	दे	ऽ	ही	ऽ	दी	ऽ	नीऽ	ऽ	सु	मि
म	(प)	म	ग	सां	–	सां	–	ध	नि॒	प	–	म	ग	म	रे
र	न	कौं	ऽ	मो	ऽ	पा	ऽ	पी	ऽ	तैं	ऽ	क	छु	न	स
ग	म	प	–	म	ग	रे	सा								
री	ऽ	ऽ	ऽ	मो	ऽ	सौं	ऽ								

अन्तरा •

०				३				×				२			
प	प	प	ध	-	ध	नि	नि	सां	-	सां	सां	सां	रें	सां	सां
ग	र	भ	बा	ऽ	स	अ	ति	आ	ऽ	स	अ	घो	ऽ	मु	ख
सां	ध	-	ध	नि	-	सां	रें	सां	नि	सां	ध	नि	-	प	-
त	हाँ	ऽ	न	मे	ऽ	री	ऽ	सु	धि	बि	स	री	ऽ	ऽ	ऽ
प	प	प	प	ध	ध	प	प	म	म	ग	गम	रे	म	ग	-
पा	ऽ	ब	क	ज	ठ	र	ज	र	न	न	हिंऽ	दी	ऽ	न्हौ	ऽ
सां	-	सां	सां	ध	नि	प	प	म	ग	म	रे	ग	म	प	-
कं	ऽ	च	न	सी	ऽ	म	म	दे	ऽ	ह	क	री	ऽ	ऽ	ऽ

मोहिं प्रभु तुमसौं होड़......!

[राग पटदीप—तीनताल]

(५१)

मोहिं प्रभु तुमसौं होड़ परी।
ना जानौं करिहौऽब कहा तुम नागर नवल हरी॥
हुतीं जिती जग मैं अधमाई सो मैं सबै करी।
अधम-समूह उधारन-कारन तुम जिय जक पकरी॥
मैं जु रह्यौं राजीव-नैन, दुरि, पाप-पहार-दरी।
पावहु मोहिं कहाँ तारन कौं, गूढ़-गँभीर खरी॥
एक अधार साधु-संगति कौ, रचि-पचि मति सँचरी।
याहू सौंज संचि नहिं राखी, अपनी धरनि धरी॥
मोकौं मुक्ति बिचारत हौ प्रभु, पचिहौ पहर-घरी।
श्रम तें तुम्है पसीना ऐहै, कत यह टेक करी?
सूरदास बिनती कह बिनवै, दोषनि देह भरी।
अपनौ बिरद सम्हारहुगे तौ यामैं सब निबरी॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! मैंने आपसे होड़ लगा रखी है। हे नागर नवल हरी ! मैं नहीं जानता कि अब क्या होगा ? क्योंकि संसार में जितने भी पाप-कर्म हैं, वे सभी मैंने किए हैं। उधर आपने पापियों का उद्धार करने का हठ पकड़ रखा है। परन्तु मेरे उद्धार के लिए आप मुझे मिलेंगे कहाँ ? क्योंकि मैं तो आपके कमल-रूपी नेत्रों से दूर—बहुत दूर—पापों के पहाड़ पर बैठा हुआ हूँ। मुझे साधु-सत्संग का एक सहारा दिखाई देता था, जिसके द्वारा बुद्धि में आपकी भक्ति का संचार होता, किन्तु वह भी न बन सका। मनमानी ही करता रहा, अर्थात् उसी प्रकार पापों की गठरी बाँधता रहा। फिर भी आप मुझे मोक्ष देने की हर समय चिन्ता करते हैं। हे प्रभु ! आप इतना परिश्रम मत कीजिए, आपको पसीना आजाएगा। ऐसा भी हठ किस काम का ! सूरदास आपसे विनती करता है कि आप इस प्रकार चिंतित न हों, केवल आपकी पतित-पावन नामक कीर्ति के प्रताप से ही पापों से भरा हुआ यह शरीर मोक्ष को प्राप्त हो जाएगा।

• स्थायी

२				०				३				×			
ध	प	म	प	नि	सां	ध	प	म	प	ग॒	म	प	नि	–	–
मो	हिं	प्र	भु	तु	म	सौं	ऽ	हो	ऽ	ड़	प	री	ऽ	ऽ	ऽ
ध	प	म	प	प	–	ग॒	मग॒	(सा) रे	–	सा	सा	नि़	–	सा	सा
मो	हिं	प्र	भु	ना	ऽ	जा	ऽऽ	नौं	ऽ	क	रि	हौ	ऽ	ऽ	ब
ग॒	ग॒	रे	सा	नि़	सा	ग॒	म	प	म	ग॒	म	प	नि	–	–
क	हा	तु	म	ना	ऽ	ग	र	न	व	ल	ह	री	ऽ	ऽ	ऽ
ध	प	म	प												
मो	हिं	प्र	भु												

• अन्तरा

०				३				×				२			
प	प	–	प	–	प	ग॒	म	प	नि	सां	नि	सां	–	सां	–
हु	तीं	ऽ	जि	ऽ	ती	ज	ग	मैं	ऽ	अ	ध	मा	ऽ	ई	ऽ
प	नि	सां	गं॒	रें	सां	ध	नि	सां	–	ध	प	ग॒	म	प	–
सो	ऽ	मैं	ऽ	स	बै	ऽ	क	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

प	म	ग॒	मग॒	रे	-	सा	सा	नि़	-	सा	सा	ग॒	-	रे	सा
अ	ध	म	सऽ	मू	ऽ	ह	उ	धा	ऽ	र	न	का	ऽ	र	न
नि़	सा	ग॒	म	प	म	ग॒	म	प	नि	-	-	ध	प	म	प
तु	म	जि	य	ज	क	प	क	री	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

तुमसौं हो ऽ............।

आजु हौं एक-एक करि......!

[राग हमीर—तीनताल]

(५२)

आजु हौं एक-एक करि टरिहौं।
कै तुमहीं कै हमहीं, माधौ, अपने भरोसें लरिहौं॥
हौं तौ पतित सात पीढ़िनि कौ, पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उघरि नच्यौ चाहत हौं, तुम्हैं बिरद बिन करिहौं॥
कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायौ हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं उठिहै, प्रभु, जब हँसि दैहौ बीरा॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर! आज मैं दो टूक फैसला करके हटूँगा। हे माधव! आज मुझे अपने ही बल-भरोसे पर लड़ना पड़ेगा, इस झगड़े में आप और मेरे सिवाय और कोई नहीं होगा। मैं सात पीढ़ियों का पापी हूँ, फिर भी विश्वास है कि मेरा उद्धार अवश्य होगा। अब मैं अपने सारे पापों की गठरी खोलकर आपके सामने रखे देता हूँ। यदि इन पापों को देखकर आपने मेरा उद्धार करने में आना-कानी की, तो आपकी कीर्ति को बट्टा लग जाएगा, क्योंकि संसार पर भली भाँति प्रकट है कि आप पतितपावन हैं। भक्त-शिरोमणि श्रीसूरदासजी का कहना है कि हे प्रभु! मैं तो आपको हीरा समझे हुए हूँ, आप मेरे विश्वास को क्यों झूठा बना रहे हैं। अब तो मैं उसी समय यहाँ से उठूँगा, जब आप मुझे अपने कृपा-रूपी प्रसाद का बीड़ा (पान) दे देंगे।

स्थायी

२				०				३				×			
ध	नि	सां	नि	मं	प	मं	ध	मं	प	ग	म	ध	-	-	-
आ	जु	हौं	ऽ	ए	क	ए	क	क	रि	ट	रि	हौं	ऽ	ऽ	ऽ

प	-	-	-	|	प	-	प	प	|	र्म	ध	प	-	|	ग	ग	म	रे
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	|	कै	ऽ	तु	म	|	हीं	ऽ	कै	ऽ	|	ह	म	हीं	ऽ
																नि	नि	नि	
सा	रे	सा	-	|	सा	रे	ग	र्म	|	प	ध	ग	म	|	ध	ध	ध	नि
मा	ऽ	धौ	ऽ	|	अ	प	ने	भ	|	रो	ऽ	सैं	ऽ	|	ल	रि	हौं	ऽ
सां	रें	सां	नि	|														
आ	जु	हौं	ऽ	|	एक-एक..........।													

● **अन्तरा**

०					३					×					२			
प	-	प	-	|	सां	सां	सां	सां	|	-	सां	सां	-	|	सां	रें	सां	-
हौं	ऽ	तौ	ऽ	|	प	ति	त	सा	|	ऽ	त	पी	ऽ	|	ढ़ि	नि	कौ	ऽ
ध	ध	ध	-	|	नि	-	सां	रें	|	नि	सां	ध	-	|	नि	-	प	-
प	ति	तै	ऽ	|	ह्वै	ऽ	नि	ऽ	|	स्त	रि	हौं	ऽ	|	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
प	प	प	-	|	ध	ध	प	प	|	ग	-	गम	प	|	म	रे	सा	-
अ	ब	हौं	ऽ	|	उ	घ	रि	न	|	च्यौ	ऽ	चाऽ	ऽ	|	ह	त	हौं	ऽ
सां	गं	-	मं	|	रें	रें	सां	सां	|	ध	ध	प	-	|	ध	नि	सां	नि
तु	म्हैं	ऽ	बि	|	र	द	बि	न	|	क	रि	हौं	ऽ	|	आ	जु	हौं	ऽ

कहावत ऐसे त्यागी......!

[राग धानी—तीनताल]

(५३)

कहावत ऐसे त्यागी दानि।
चारि पदारथ दिए सुदामहिं अरु गुरु के सुत आनि॥
रावन के दस मस्तक छेदे, सर गहि सारँग-पानि।
लंका दई बिभीषन जन कौं, पूरबली पहिचानि॥
बिप्र सुदामा कियौ अजाची, प्रीति पुरातन जानि।
सूरदास सौं कहा निहोरौ नैननि हूँ की हानि!

भावार्थ—हे प्रभो ! सारा संसार जानता है कि आप बड़े त्यागी और दानी हैं। सुदामा-जैसे दीन ब्राह्मण को चारों प्रकार के पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) तथा गुरुजी के पुत्रों को जीवन-दान देना आपका ही कार्य था। आपने धनुष-बाण धारण करके, दस शीशोंवाले रावण-जैसे महाबली को काल के हवाले कर दिया और उसके छोटे भाई विभीषण को अपना पूर्व-भक्त समझकर, सोने की लंका तथा जीता हुआ सभी वैभव दे दिया। सुदामा ब्राह्मण के प्रेम को अटूट समझकर उसे सदैव के लिए न माँगनेवाला बना दिया। किन्तु हे श्यामसुन्दर ! इन सब कार्यों का 'सूरदास' पर क्या एहसान है ? उसकी तो आँखें भी नहीं रहीं।

स्थायी •

२				०				३				×			
															सा
															क
ग	म	प	सां	प	नि	–	प	ग	रे	नि	सा	ग	–	सा	–
हा	ऽ	व	त	ऽ	ऐ	ऽ	से	त्या	ऽ	गी	ऽ	दा	ऽ	नि	ऽ
–	–	–	–	नि	–	नि	नि	सा	–	सा	सा	सा	ग	म	प
ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	चा	ऽ	रि	प	दा	ऽ	र	थ	दि	ए	ऽ	सु
ग	–	सा	सा	ग	म	प	नि	प	सां	नि	प	ग	–	ग	सा
दा	ऽ	म	हिं	अ	रु	गु	रु	के	ऽ	सु	त	आ	ऽ	नि	क

अन्तरा •

०				३				×				२			
प	–	प	प	म	प	ग	म	प	नि	प	नि	सां	रें	सां	–
रा	ऽ	व	न	के	ऽ	द	स	म	ऽ	स्त	क	छे	ऽ	दे	ऽ
प	रें	सां	रें	नि	सां	नि	प	म	प	ग	सा	ग	म	प	प
स	र	ग	हि	सा	ऽ	रें	ग	पा	ऽ	नि	क	हा	ऽ	व	त

मोसौं बात सकुच तजि......!

[राग शुद्धकल्याण—तीनताल]

(५४)

मोसौं बात सकुच तजि कहियै।
कत ब्रीड़त, कोउ और बतावौ, ताही के ह्वै रहियै॥
कैधौं तुम पावन प्रभु नाहीं कै कछु मो मैं झोलौ।
तौ हौं अपनी फेरि सुधारौं बचन एक जौ बोलौ॥
तीन्यौ पन मैं ओर निबाहे, इहै स्वाँग कौं काछे।
सूरदास कौं यहै बड़ौ दुख, परत सबनि के पाछे॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! आप मुझसे शरमाते क्यों हैं ? मुझे आपका संकोच अच्छा नहीं लगता। यदि आपको कोई अन्य भक्त याद कर रहा है, तो फिर उसका ही उद्धार कीजिए। आपके इस प्रकार चुप रहने से कुछ स्पष्ट नहीं होता। या तो आप मेरा उद्धार करना नहीं चाहते या मुझमें ही किसी प्रकार की कमी है। यदि यही बात सत्य है, तो आप एक बात साफ कह दीजिए, ताकि मैं अपनी भूल सुधारने का प्रयत्न करूँ। इसी उधेड़-बुन में सूरदास की तीनों अवस्थाएँ (बाल्य, युवा, प्रौढ़ा) व्यतीत हो चुकीं; किन्तु आपकी ओर से कोई निश्चित उत्तर नहीं मिला। क्या करूँ, मेरी भी पीछे पड़जाने की आदत है, अतः मजबूर हूँ और आपके पीछे ही पड़ा रहूँगा।

● स्थायी

२				०				३				×			
ग	रे	सा	रे	ग	–	ग	रे	ग	मं	प	ध	रे	रे	सा	–
मो	ऽ	सौं	ऽ	बा	ऽ	त	स	कु	च	त	जि	क	हि	यै	ऽ
ग	रे	सा	–	ग	प	ग	प	ग	रे	रे	रे	ग	सा	रे	ग
मो	ऽ	सौं	ऽ	क	त	ब्री	ऽ	ड़	त	को	उ	औ	ऽ	र	ब
ग	–	सा	–	ग	–	प	ध	सां	–	नि	ध	प	मं	प	मं
ता	ऽ	वौ	ऽ	ता	ऽ	ही	ऽ	के	ऽ	ह्वै	ऽ	र	हि	यै	ऽ

● अन्तरा

०				३				×				२			
ग	प	ग	प	प	प	प	–	ग	प	ध	नि	प	–	ग	–
कै	ऽ	धौं	ऽ	तु	म	पा	ऽ	व	न	प्र	भु	ना	ऽ	हीं	ऽ

ग	ध	प	म	ग	रे	सा	रे	रे	प	प	ग	-	-	-	-
कै	ऽ	क	छु	मो	ऽ	मैं	ऽ	झो	ऽ	लौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सा	रे	रे	-	रे	रे	रे	-	सा	रे	ग	प	ग	रे	सा	-
तौ	ऽ	हौं	ऽ	अ	प	नी	ऽ	फे	ऽ	रि	सु	धा	ऽ	रौं	ऽ
ग	ग	प	ध	सां	सां	नि	ध	प	मं	प	मं				
ब	च	न	ए	ऽ	क	जौ	ऽ	बो	ऽ	लौ	ऽ	मोसौं............।			

प्रभु, हौं बड़ी बेर कौ......!

[राग खमाज—तीनताल]

(५५)

प्रभु, हौं बड़ी बेर कौ ठाढ़ौ।
और पतित तुम जैसे तारे, तिनहीं मैं लिखि काढ़ौ॥
जुग-जुग बिरद यहै चलि आयौ, टेरि कहत हौं यातैं।
मरियत लाज पाँच पतितनि मैं, हौं अब कहौ घटि कातैं॥
कै प्रभु हारि मानि कै बैठौ, कै करौ बिरद सही।
सूर पतित जौ झूठ कहत है, देखौ खोजि बही॥

भावार्थ—हे प्रभु ! मुझे खड़े-खड़े बहुत देर हो गई है। आपने, जैसे और बहुत से पापियों का उद्धार किया है, उन्हीं पापियों के समान समझकर मेरा भी उद्धार कर दीजिए। युगों से आपका यश सुनने में आरहा है कि आप पतितपावन हैं, अतः मैं भी जोर-जोर से प्रार्थना कर रहा हूँ। आपके उद्धार किए हुए सभी पतितों से मेरा दर्जा ऊँचा है, आप मुझे किसी से कम न समझें। अब स्पष्ट बात यह है कि या तो आप हार मानकर बैठ जाइए या मेरा उद्धार करके अपनी कीर्ति को सत्य प्रमाणित कीजिए। यदि आप समझते हैं कि सूरदास झूठ बोल रहा है, तो बही खोलकर मेरे पापों की गणना कर लीजिए।

स्थायी

०				३				×				२			
														प	ध
														प्र	भु
ग	प	म	म	ग	सा	ग	म	प	-	प	-	-	-	-	-
हौं	ऽ	ब	ड़ी	बे	ऽ	र	कौ	ठा	ऽ	ढ़ौ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ

म	ध	ध	ध	ध	ध	प	प	पध	नि	नि	प	ध	प	प	–
ओ	ऽ	र	प	ति	त	तु	म	जै	ऽ	से	ऽ	ता	ऽ	रे	ऽ
नि	रें	सां	–	धनि	–	प	प	पनि	धप	ग	म	प	–	प	ध
ति	न	हीं	ऽ	मैंऽ	ऽ	लि	खि	काऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ढ़ौ	ऽ	प्र	भु

● **अन्तरा**

प	ध	प	म	ग	रे	सा	सा	रे	–	ग	म	प	–	प	–
जु	ग	जु	ग	बि	र	द	य	है	ऽ	च	लि	आ	ऽ	यौ	ऽ
म	ध	ध	ध	ध	ध	ध	प	ध	रें	सां	–	नि	नि	ध	प
टे	ऽ	रि	क	ह	त	हौं	ऽ	या	ऽ	तें	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
सां	सां	सां	सां	नि	–	ध	ध	निध	प	प	मं	प	ध	प	–
म	रि	य	त	ला	ऽ	ज	पाँ	ऽऽ	च	प	ति	त	नि	मैं	ऽ
सा	रे	रे	रे	रे	ग	म	प	(म)	–	ग	–	ग	म	प	ध
हौं	ऽ	अ	ब	क	हौ	घ	टि	का	ऽ	तें	ऽ	ऽ	ऽ	प्र	भु

मो सम कौन कुटिल खल······!

[राग नन्द—तीनताल]

(५६)

मो सम कौन कुटिल खल कामी।
तुम सौं कहा छिपी करुनामय, सबके अन्तरजामी!
जो तन दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसौ नोन-हरामी।
भरि-भरि द्रोह बिषै कौं धावत, जैसें सूकर ग्रामी॥
सुनि सतसंग होत जिय आलस, विषयिनि सँग बिसरामी।
श्रीहरि-चरन छाँड़ि बिमुखनि की निसि-दिन करत गुलामी॥
पापी परम, अधम, अपराधी, सब पतितनि मैं नामी।
सूरदास प्रभु अधम-उधारन सुनियै श्रीपति स्वामी॥

भावार्थ—हे भगवान् ! मेरे समान नीच, दुष्ट और विषयी जीव कोई दूसरा नहीं है। वैसे भी आपसे कोई बात छिपी नहीं रह सकती, क्योंकि आप सबके हृदय की जाननेवाले हैं। मैं ऐसा नमकहराम हूँ कि आपने ही मुझे मनुष्य का शरीर दिया है और आपको ही भूला हुआ हूँ। मैं अनेक प्रकार की बुराइयों को लेकर विषय के ऊपर ठीक उसी प्रकार झपटता हूँ, जिस प्रकार गाँव का सूअर बुरी चीज पर टूट पड़ता है। यदि कहीं भगवत् भक्तों का सत्संग होता हुआ सुनता हूँ, तो हृदय को बुरा मालूम होता है, किन्तु कामी और विषयी साथियों के साथ समय गुजारने में आनन्द आता है। निःसन्देह मैं बहुत बड़ा पापी हूँ, नीच हूँ और कसूरवार हूँ, यहाँ तक कि सारे पापियों में मशहूर हूँ। किन्तु, हे श्यामसुन्दर ! आप पापियों का उद्धार करनेवाले हैं, अतः हे लक्ष्मीपति ! मुझ सूरदास की प्रार्थना सुनिए अर्थात् मेरा भी उद्धार कीजिए !

स्थायी •

२				०				३				×			
ग	म	प	ध	नि	सां	नि	सां	ध	नि	प	ध	मं	प	प	–
मो	ऽ	स	म	कौ	ऽ	न	कु	टि	ल	ख	ल	का	ऽ	मी	ऽ
ग	म	प	ध	सां	सां	सां	–	ध	नि	प	ध	मं	प	ध	नि
मो	ऽ	स	म	तु	म	सौं	ऽ	क	हा	ऽ	छि	पी	ऽ	क	रु
रें	सां	सां	सां	नि	सां	ध	नि	ग	म	प	ध	नि	–	प	–
ना	ऽ	म	य	स	ब	के	ऽ	अं	ऽ	त	र	जा	ऽ	मी	ऽ
				ग	म	ध	प	रे	सा	–	ग	–	म	प	ध
				जो	ऽ	त	न	दि	यौ	ऽ	ता	ऽ	हि	बि	स
नि	–	प	–	गम	पध	सां	–	ध	नि	प	ध	मं	प	ग	म
रा	ऽ	यौ	ऽ	ऐऽ	ऽऽ	सौ	ऽ	नौ	ऽ	न	ह	रा	ऽ	मी	ऽ
ग	म	प	ध												
मो	ऽ	स	म												

अन्तरा •

०				३				×				२			
ग	म	प	प	सां	सां	सां	सां	नि	सां	नि	–	प	–	सां	–
भ	रि	भ	रि	द्रो	ऽ	ह	बि	षै	ऽ	कौं	ऽ	धा	ऽ	व	त

ग	म	प	ध	नि	–	प	प	पध	–	प	–	ग	म	प	–
जै	ऽ	सैं	ऽ	सू	ऽ	क	र	ग्राऽ	ऽ	मी	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
ग	ग	ग	ग	म	–	म	ग	–	प	ध	प	रे	–	सा	सा
सु	नि	स	त	सं	ऽ	ग	हो	ऽ	त	जि	य	ग्रा	ऽ	ल	स
ध़	नि़	सा	ग	नि़	सा	ग	म	गम	पध	सां	–	नि	–	प	–
वि	ष	यि	नि	सँ	ग	बि	स	राऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	मी	ऽ

माधो जू, मोहिं काहे की……!

[ताल धुमाली]

(५७)

माधो जू, मोहिं काहे की लाज।
जनम-जनम यौं हीं भरमायौ, ग्रभिमानी, बेकाज॥
जल-थल जीव जिते जग, जीवन निरखि दुखित भए देव।
गुन ग्रवगुन की समुझ न संका, परि ग्राई यह टेव॥
ग्रब ग्रनखाइ कहौं, घर ग्रपनैं राखौ बाँधि-बिचारि।
सूर स्वान के पालनहारैं, ग्रावति हैं नित गारि॥

भावार्थ—हे माधव! मुझ निर्लज्ज को शर्म क्यों ग्राने लगी? मैं तो प्रत्येक जन्म में, बिना किसी लक्ष्य के, घमण्डी बनकर इसी प्रकार भटकता रहा हूँ। समुद्र ग्रौर पृथ्वी पर बसनेवाले विश्व के सभी जीवों ने मेरी इस लक्ष्यहीन ग्रवस्था को देखकर दुःख प्रकट किया। किन्तु, हे प्रभु! मैं ग्रपनी भलाई-बुराई की चिन्ता न करके इसी प्रकार कुत्ते की तरह भटकता रहा। ग्रब ग्राप कृपा करके मुझ लक्ष्यहीन कुत्ते को ग्रपने ही घर किसी कोने में बाँध लीजिए। मैं वहाँ बिना खाए-पिए ही रहा ग्राऊँगा, क्योंकि कुत्ता जहाँ भी जाता है, वहीं उसके पालनेवाले को गालियाँ मिलती हैं। सूरदास नहीं चाहता कि उसकी वजह से ग्रापकी बदनामी हो।

• स्थायी

×				०				×				०			
रे	म	प	नि़	ध	प	–	–	पध	नि़ध	प	म	ग	सा	रे	म
मा	ऽ	धो	ऽ	जू	ऽ	ऽ	ऽ	मो	ऽऽ	हिं	का	ऽ	हे	की	ऽ
ग	रे	–	–	सारे	ग	सा	–								
ला	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽ	ऽ	ज								

ध़	सा	ध़	सा	सा	सा	सा	–	रेग	मग	रे	सा	रेग	मग	रे	–
ज	न	म	ज	न	म	यौं	ऽ	हीं ऽ	ऽऽ	भ	र	मा	ऽऽ	यौ	ऽ
रे	ध	ध	–	पध	नि़ध	प	म	प	–	–	–	म	ग	रे	सा
अ	भि	मा	ऽ	नोऽ	ऽऽ	बे	ऽ	का	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ज

अन्तरा •

प	ध	प	म	ग	–	रे	सा	सा	–	सा	सा	रे	–	सा	सा
ज	ल	थ	ल	जी	ऽ	व	जि	ते	ऽ	ज	ग	जी	ऽ	व	न
रे	म	म	म	प	ध	नि	नि	ध	प	ध	प	–	–	–	प
नि	र	खि	दु	खि	त	भ	ए	दे	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व
ग	ग	प	ध	सां	सां	सां	–	नि	सां	ध	प	ध	–	प	–
गु	न	अ	व	गु	न	की	ऽ	स	मु	झ	न	सं	ऽ	का	ऽ
म	ध	ध	–	ध	–	म	म	मप	–	–	–	म	ग	रे	सा
प	रि	आ	ऽ	ई	ऽ	य	ह	टेऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	व

अब मैं नाच्यौ बहुत......!

[तीनताल : मध्यम को षड्ज मानकर]

(५८)

अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल ।
काम-क्रोध कौ पहिरि चोलना, कण्ठ विषय की माल ॥
महामोह के नूपुर बाजत, निन्दा-सब्द-रसाल ।
भ्रम-भोयौ मन भयौ पखावज, चलत असंगत चाल ॥
तृष्ना नाद करति घट भीतर, नाना बिधि दै ताल ।
माया कौ कटि फेंटा बांध्यौ, लोभ-तिलक दियौ भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई जल-थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अबिद्या दूरि करौ नँदलाल ॥

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! संसार की माया मुझे बहुत नचा रही है । मैंने अपने शरीर पर काम-क्रोध आदि शत्रुओं का चुगा और गले में अनेक प्रकार के विषयों से भरा हार पहन रखा है । मेरे पैरों में महामोह-रूपी घुँघरू बँधे हुए हैं, जिनसे निंदनीय शब्दों की ध्वनि निकल रही है । मेरा पखावज-रूपी हृदय बज तो रहा है, किन्तु भ्रम में पड़ जाने के कारण बेताला होकर साथ कर रहा है । मेरे हृदय की तृष्णा नाद बनकर बाहर आरही है, जो मेरे नृत्य के साथ अनेक प्रकार की उल्टी-सीधी ताल लगाती है । मेरी कमर में माया का फेंटा बँधा हुआ है और माथे पर लोभ का तिलक लग रहा है । इस प्रकार की पोशाक धारण करके मैं संसार के जल-थल पर अनेक प्रकार की कलाएँ दिखा रहा हूँ । इस प्रकार के भ्रम में पड़कर, मैं वास्तविकता को बिलकुल भूल गया हूँ । मुझे तनिक भी ध्यान नहीं कि मेरी मृत्यु निश्चित है । अतः हे प्रभो ! मुझ सूरदास के इस प्रकार के सभी अज्ञानों का नाश कीजिए ताकि मेरा अन्त समय सुधर जाए ।

• स्थायी

२				०				३				×			
रेम	रेसा	नि़	सा	रेम	पध	प	म	रे	रे	नि़	सा	सा	-	-	सा
अS	बS	मैं	S	नाS	SS	च्यौ	S	ब	हु	त	गु	पा	S	S	ल
रेम	रेसा	नि़	सा	रेम	रेम	रे	नि़	सा	सा	सा	सा	रे	म	रे	नि़
अS	बS	मैं	S	काS	SS	म	क्रो	S	ध	कौ	S	प	हि	रि	चो
सा	सा	सा	सा	म	रे	म	म	प	प	ध	म	प	–	–	–
S	ल	ना	S	कं	S	ठ	वि	ष	य	की	S	मा	S	S	S
म	रे	नि़	सा												
S	S	S	ल	नाच्यौ…………।											

• अन्तरा

०				३				×				२			
रे	रे	म	म	प	प	प	–	पधु	नि॒ध	प	म	रे	म	प	प
म	हा	S	मो	S	ह	के	S	नूS	SS	पु	र	बा	S	ज	त
म	ध	ध	–	प	ध	म	म	पध	–	–	–	पध	नि॒ध	प	प
नि	S	दा	S	स	S	ब्द	र	साS	S	S	S	SS	SS	S	ल

रे	म	प	ध	नि॒	-	ध	प	पध	पध	-	प	रे	म	प	प
अ	म	भो	ऽ	यौ	ऽ	म	न	भऽ	यौऽ	ऽ	प	खा	ऽ	व	ज
म	म	ग	म	रे	म	पध	पध	रे	-	-	-	नि॒सा	-नि॒	सारे	-
च	ल	त	अ	सं	ऽ	गऽ	तऽ	चा	ऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ल
रेम	पध	प	म												
नाऽ	ऽऽ	च्यौ	ऽ												

कौन सुनै यह बात……!

[राग बागेश्री—तीनताल]

(५९)

कौन सुनै यह बात हमारी ?
समरथ और न देखौं तुम बिनु, कासौं बिथा कहौं बनवारी ?
तुम अबिगत, अनाथ के स्वामी, दीन-दयाल, निकुंज-बिहारी ।
सदा सहाइ करी दासनि की, जो उर धरी सोइ प्रतिपारी ।।
अब किंहि सरन जाउँ जादौपति, राखि लेहु बलि, त्रास निवारी ।
सूरदास चरननि की बलि-बलि, कौन खता तैं कृपा बिसारी ?

भावार्थ—हे बनवारी ! आपके अतिरिक्त ऐसा कोई नहीं, जो मेरी प्रार्थना सुन सके । मुझे आपके समान सामर्थ्यवान कोई दूसरा दिखाई नहीं पड़ता, जिसके सामने अपने हृदय की व्यथा रख सकूँ । हे निकुञ्जों में विहार करनेवाले भगवान् श्यामसुन्दर ! आप सदैव से दीनों पर दया करते आए हैं तथा निर्बल और निःसहायों के स्वामी रहे हैं । आपने हमेशा सेवकों की सहायता की है और उनके प्रत्येक हठ को भी पूरा किया है । अतः हे यादवपति ! आपको छोड़कर मैं अब किसकी शरण लूँ ! राजा बलि के भय को हरनेवाले हे प्रभो ! मुझे भी अपने चरणों में स्थान दीजिए । सूरदास आपके चरणों पर बार-बार बलिहार होता है । कृपया बतलाइए कि कौन-से अपराध के कारण, आप कृपा को भूल बैठे हैं ?

स्थायी

०				३				×				२			
-	ध	-	नि॒	ध	म	ग॒	रे	म	-	म	प	ग॒	-	रे॒	सा
ऽ	कौ	ऽ	न्सु	नै	ऽ	य	ह	बा	ऽ	त	ह	मा	ऽ	री	ऽ

रे	सा	नि़	ध़	सा	–	सा	सा	म	–	प	ग	म	नि	ध	ध
स	म	र	थ	औ	ऽ	र	न	दे	ऽ	खौं	ऽ	तु	म	बि	नु
ग	म	ध	नि	सां	सां	ध	नि	सां	–	नि	ध	म	ग	रे	सा
का	ऽ	सौं	ऽ	बि	था	ऽ	क	हौं	ऽ	ब	न	वा	ऽ	री	ऽ

● **अन्तरा**

सां	नि	ध	म	ग	रे	सां	सां	–	सां	नि	ध	सां	–	सां	–
तु	म	अ	बि	ग	त	अ	ना	ऽ	थ	के	ऽ	स्वा	ऽ	मी	ऽ
ध	नि	सां	मं	गं	रें	सां	नि	सां	नि	सां	रें	नि	–	ध	–
दी	ऽ	न	द	या	ऽ	ल	नि	कुं	ऽ	ज	बि	हा	ऽ	री	ऽ
म	ध	–	नि	ध	–	म	प	ग	–	म	ग	रे	रे	सा	–
स	दा	ऽ	स	हा	ऽ	इ	क	री	ऽ	दा	ऽ	स	नि	की	ऽ
नि़	सा	ग	म	ध	ध	–	नि	सां	–	नि	ध	म	ग	रे	सा
जो	ऽ	उ	र	ध	री	ऽ	सो	इ	ऽ	प्र	ति	पा	ऽ	री	ऽ

तुम तजि और कौन पै……!

[तीनताल : मध्यम को षड्ज मानकर]

(६०)

तुम तजि और कौन पै जाउँ ?
काकैं द्वार जाइ सिर नाऊँ, पर हथ कहाँ बिकाउँ ।।
ऐसौ को दाता है समरथ, जाके दिएँ अघाउँ ।
अन्तकाल तुम्हरैं सुमिरन गति, अनत कहूँ नहिं दाउँ ।।
रंक सुदामा कियौ अजाची, दियौ अभय-पद ठाउँ ।
कामधेनु, चिन्तामनि, दीन्हौं कल्पवृक्ष-तर छाउँ ।।
भव-समुद्र अति देखि भयानक, मन मैं अधिक डराउँ ।
कीजै कृपा सुमिरि अपनौ प्रन, सूरदास बलि जाउँ ।।

भावार्थ—हे श्यामसुन्दर ! मैं आपको छोड़कर और किसके पास जा सकता हूँ ? मैं अपने शीश को किसी अन्य के द्वार पर झुकाकर, पराए हाथों कभी नहीं बिक सकता। मैं जानता हूँ कि आपके समान सामर्थ्यवान् दाता अन्य कोई नहीं, जो मेरी तृप्ति कर सके। आप ऐसे दयालु हैं कि मृत्यु के समय केवल स्मरण-मात्र से ही मुक्ति प्रदान करते हैं। आपने सुदामा-जैसे दीन ब्राह्मण को कामधेनु, चिंतामणि और कल्पवृक्ष की छाँह आदि दुर्लभ पदार्थों को हँसते-हँसते दान कर दिया। अपने अभयप्रद चरणों में स्थान देकर उसे सदैव के लिए भिक्षावृत्ति से निवृत्त कर दिया। अब इस भयानक संसार-सागर को देखकर 'सूरदास' का हृदय बहुत डर रहा है। अतः भगवन् ! अपने उसी प्रण को (मम पन शरणागत-भयहारी) स्मरण करके मेरी रक्षा कीजिए। मैं बार-बार आपकी बलैया लेता हूँ।

स्थायी •

२				०				३				×			
ध़	नि़	सा	रे	ग	म	म	नि॒	ध	प	म	ग (रे)	म	–	म	–
तु	म	त	जि	औ	ऽ	र	कौ	ऽ	न	पै	ऽ	जा	ऽ	उँ	ऽ
ध़	नि़	सा	रे	धनि॒	धनि॒	प	–	पध	पध	पम	मप	मप	मग	गप	गरे
तु	म	त	जि	काऽ	ऽऽ	कैं	ऽ	द्वाऽ	ऽऽ	रऽ	जाऽ	ऽऽ	इऽ	सिऽ	रऽ
रेग॒	रेसा	सा	–	ध़	नि़	सा	रे	ग	म	रे	ग	म	–	म	–
नाऽ	ऽऽ	ऊँ	ऽ	प	र	ह	थ	क	हाँ	ऽ	बि	का	ऽ	उँ	ऽ
गम	गरे	रेग	रेसा												
ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	और कौन पै........।											

अन्तरा •

०				३				×				२			
सा	प	प	–	प	म	प	ध	नि॒	ध	प	म	ग	प	म	म
ऐ	ऽ	सौ	ऽ	को	ऽ	दा	ऽ	ता	ऽ	है	ऽ	स	म	र	थ

प	नि	ध	प	धप	म	ग	म	रे	ग	गम	–	–	–	–	–
जा	ऽ	के	ऽ	दिऽ	ऐं	ऽ	अ	घा	ऽ	उँऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ
प	सां	सां	नि	ध	प	म	ग	रे	ग	म	प	ग	प	म	म
अं	ऽ	त	का	ऽ	ल	तु	म्ह	रें	ऽ	सु	मि	र	न	ग	ति
ध़	नि़	सा	रे	ग	म	रे	ग	म	–	म	–	गम	गरे	रेग	रेसा
अ	न	त	क	हूँ	ऽ	न	हिं	दा	ऽ	उँ	ऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ



'संगीत कार्यालय' के प्रकाशन

गायन, वादन तथा नृत्य-सम्बन्धी साहित्य

बाल संगीत शिक्षा भाग १
कक्षा ६ के लिए ०.५०
बाल संगीत शिक्षा भाग २
कक्षा ७ के लिए ०.७५
बाल संगीत शिक्षा भाग ३
कक्षा ८ के लिए १.००
संगीत किशोर
कक्षा ९ व १० के लिए क्रियात्मक १.५०
हाईस्कूल संगीत शास्त्र-कक्षा १० के लिए १.५०
संगीत शास्त्र-थ्योरी इन्टर तक १.००
क्र० पु० मालिका-भातखण्डे, प्रैक्टिकल कोर्स
" " " भाग १-प्रथम वर्ष १.००
" " " " २-द्वितीय वर्ष ८.००
" " " " ३-तृतीय वर्ष १२.००
" " " " ४-चतुर्थ वर्ष १२.००
" " " " ५-पंचम वर्ष ८.००
" " " " ६-षष्ठ वर्ष ८.००
संगीत विशारद-थ्योरी १ से ५ वर्ष ५.००
संगीत सीकर-
इन्टरमीडिएट प्रश्नपत्रों का हल ५.००
संगीत अर्चना-
('क्रमिक पुस्तक' तीसरे भाग की तानें) ६.००
संगीत कादम्बिनी-
('क्रमिक पुस्तक' चौथे भाग की तानें) ६.००
भात० संगीत शास्त्र-शास्त्रीय विवेचन (थ्योरी)
" " भाग १-प्रथम वर्ष ५.००
" " " २-द्वितीय वर्ष ६.००
" " " ३-वर्ष ३-४ ६.००
" " " ४-वर्ष ५-६ १५.००
मारिफुन्नग़मात भाग १-प्रथम वर्ष ६.००
" " २-द्वितीय वर्ष ६.००
" " ३-तृतीय वर्ष १.२५
संगीत सागर-गायन, वादन एवं नर्तन ६.००
रवीन्द्र संगीत-स्वरलिपि-सहित गीत ३.००
बेला विज्ञान-
थ्योरी तथा वादनपाठ, ६० गतें ५.००

सितार मालिका-
शास्त्रीय विवेचन १ से ४ वर्ष तक का ५.००
सूर संगीत-भाग १ व २
भजन व स्वरलिपियाँ ३.००
गान्धर्व संगीत प्रवेशिका ३.००
सहगल संगीत—स्वरलिपि-सहित गीत २.५०
मृदंग तबला प्रभाकर-भाग १-२ ४.५०
ताल प्रकाश-तबला-कोर्स वर्ष १ से ६ ६.००
ताल अंक-सचित्र तबला-शिक्षक ४.००
संत संगीत अंक-भजन व स्वरलिपियाँ ३.००
राष्ट्रीय संगीत अंक-
राष्ट्रीय गीत मय स्वरलिपियाँ २.५०
राग अंक-स्वरलिपि-सहित ४० राग ३.५०
वाद्य संगीत अंक-
विभिन्न वाद्यों को बजाने का ढंग ३.००
बिलावल थाट अंक-
४० राग-स्वरलिपि व त्रिताल-बाज २.५०
कल्याण थाट अंक-
२५ राग-स्वरलिपि व झपताल-बाज २.५०
भैरव थाट अंक-
३३ राग-स्वरलिपि व चौताल-बाज २.५०
पूर्वी थाट अंक-
२५ राग-स्वरलिपि व एकताल-बाज २.५०
खमाज थाट अंक-
३३ राग-स्वरलिपि व धमार-बाज २.५०
काफी थाट अंक-
५८ राग-स्वरलिपि व दीपचंदी-बाज २.५०
मारवा थाट अंक-
१८ राग-स्वरलिपि व रूपक-बाज २.५०
तोड़ी थाट अंक-
१५ राग-स्वरलिपि व आड़ाचौताल-बाज २.५०
आसावरी थाट अंक-
२१ राग-स्वरलिपि व सवारी-बाज २.५०
भैरवी थाट अंक-
१५ राग-स्वरलिपि व झूमरा-बाज २.५०
कर्नाटक संगीत अंक ४.००
ध्रुपद-धमार अंक ४.००
हरिदास अंक-जीवनी व गीत-प्रबन्ध १.००